Children's Literature

PREPARATION AND EVALUATION

बाल साहित्य

निर्माण और मूल्यांकन

Editor
I. S. SHARMA

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
National Council of Educational Research and Training

May 1982
Vaisakha 1904

P. D. 2 T—MGB

Cover Design : K. C. WAGH

Published at the Publication Department by V. K. Pandit, Secretary, National Council of Educational Research and Training, Sri Aurobindo Marg, New Delhi 110016 and printed at the Ajanta Book Binders & Printers, Laxmi Nagar, Delhi 110092.

CHILDREN'S LITERATURE

Preparation and Evaluation

बाल साहित्य

निर्माण और मूल्यांकन

Foreword

Children constitute the wealth of a nation in more than one sense. The future of a nation depends upon the quality of up-bringing that children receive during their formative years. For this purpose, along with the physical growth, the emotional and intellectual development of children need continuous stimulation. The sources of the former are several. Children's literature provides one source for such stimulation. It provides a treasury of information, a bunch of thought-provoking situations, a journey through various types of feelings and emotions, a challenge to their creative potential.

Children's literature, to serve these and other purposes, must be of suitable quality. The erstwhile Department of Textbooks, therefore, organised a seminar to discuss principles and procedures for the preparation and evaluation of children's literature. The seminarians included eminent editors of children's magazines, authors of children's literature from different languages, educationists and teachers. One important feature of the seminar was that all the participants contributed papers on various themes related to children's literature which were assigned to them by the Department These papers have been edited for publication.

The procedures and tools for evaluating children's literature in the form of guidelines included in this publication are suggestions and not prescriptions. The same is true about the principles and procedures for writing for children. It is, however, hoped that it will be helpful to the writers, evaluators, selectors and publishers of children's literature.

Dr. I.S. Sharma, who is in-charge of this project, has undertaken pains in organising the seminar and editing the papers for publication. In later stages, he was assisted by Dr. Sunita Goel and Dr. Manjula Mathur. Their efforts deserve appreciation The Council is grateful to Shri Jaiprakash Bharati, Editor 'Nandan', Hindi monthly, who provided his expertise in this effort. Thanks are also due to Dr. Shyam Singh Shashi, Dr. H K Devsare, Shri Kanhaiya Lal Nandan, Smt. Manorama Jafa, Shri Nirankar Dev Sewak, Dr. Mahendra Bhanawat, Shri Nand Chaturvedi, Shri Sudhakar Prabhu, Dr. U.S. Chaudhari, Shri K. Sachidanandaya, Dr. H.P. Rajguru, Dr. Saifi Premi, Dr. (Mrs) Gomathi Ammal, Dr. N.K. Jangira, Shri G.D. Sharma and Shri R.K Chopra, who not only participated in the seminar but also contributed useful papers.

It is hoped that the publication will be useful in its own humble way in improving the quality of children's literature.

SHIB K MITRA
Director
National Council of
Educational Research and Training

New Delhi
October 1979

अपनी ओर से

सन् 1979 विश्व भर मे बाल-वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है। आखिर हमे उस बाल-देवता को स्वीकारना ही पडा जिसकी सदा ही उपेक्षा होती रही है। यह जानते-मानते हुए भी कि किसी भी राष्ट्र का भार कल इन नाजुक कधों को सभालना होगा, हमने उन कधो को बलिष्ट बनाने की ओर ध्यान ही नही दिया। 'देर आयद दुरुस्त आयद' की कहावत को चरितार्थ करते हुए विश्व के नेताओ का ध्यान बच्चों की ओर भी गया। इसी के फलस्वरूप उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष मनाने का निर्णय किया। विश्व मे यह बाल-वर्ष अनेक प्रकार से मनाया जा रहा है और इसके माध्यम से बाल-शक्ति को महत्व दिया जा रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा सस्थान के पाठ्यपुस्तक विभाग ने भी कुछ बाल-साहित्य-लेखको तथा शिक्षाविदो को आमन्त्रित कर बाल-साहित्य पर एक गोष्ठी का आयोजन किया। गोष्ठी का उद्घाटन करने से पूर्व संस्थान के निदेशक डा० शिवकुमार मित्र ने संस्थान में बाल देवता की मूर्ति का अनावरण करके माल्यार्पण किया। उन्होंने बालक और बाल-साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए प्रतिभागियों से अनुरोध किया कि वे कुछ ऐसे मार्ग सुझाएँ जिनके द्वारा यह साहित्य दूर-दराज के गाँवों में रहने वाले बालको तक भी पहुँचाया जा सके। अभी तक बाल साहित्य केवल शहरो तक और वह भी इने-गिने साधन-सम्पन्न बालको तक ही पहुँच पाता है। उन्होने यह भी स्पष्ट किया कि बाल-साहित्य का कार्य केवल ज्ञान थोपना न होकर मनोरजनात्मक ढग से जीवन-मूल्यो की घुट्टी पिलाना है। गोष्ठी मे आए प्रतिभागियो का स्वागत करते हुए उन्होने गोष्ठी को सफलता की कामना की।

तदुपरान्त विभागाध्यक्ष श्रीमती आदर्श खन्ना ने प्रतिभागियो का स्वागत करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय बालवर्ष की पूर्व संध्या में आयोजित इस गोष्ठी को बालोपयोगी बनाने पर बल दिया। उन्होंने कहा कि इस गोष्ठी की सफलता इसी बात पर निर्भर करती है कि इसके फलस्वरूप बाल देवता का हविष तैयार करने वालो का मार्ग-दर्शन हो सके और वे बालक को स्वस्थ, सुन्दर एव सोद्देश्य साहित्य दे सके।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के सह-निदेशक डा० ए० एन० बोस ने अपने समापन भाषण मे इस बात पर बल दिया कि बाल-साहित्य के लेखकों को तथ्यो को, विशेषरूप से वैज्ञानिक तथ्यो को, सही रूप मे प्रस्तुत करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि इन साहित्यकारों को कुछ ऐसी पुस्तके भी लिखनी चाहिए जिनके विषय युवाओं के लिए उपयोगी हो किन्तु उनकी भाषा प्राथमिक कक्षाओं के स्तर की हो ताकि इनका उपयोग प्रौढ़ शिक्षा योजना के अन्तर्गत किया जा सके।

पाँच दिन की इस गोष्ठी मे विभिन्न विद्वानो ने अपने-अपने लेख पढे जिन पर विस्तार से चर्चा हुई। चर्चा के आधार पर इन लेखों में सशोधन-परिवर्तन किया गया और अब इन्हें पुस्तकाकार

रूप में प्रकाशित कराया जा रहा है। इस पुस्तक के तीन भाग किए गए है। पहले भाग में बाल-साहित्य के प्रणयन और मूल्याकन से सबधित लेख है। इन लेखो के शीर्षक है—बाल-साहित्य मे विषय चयन और प्रस्तुतीकरण, बाल-साहित्य की रचना-प्रक्रिया, बाल-साहित्य और बालको की पठनरुचि, बाल-साहित्य मे जीवन-मूल्य, बाल-साहित्य में चित्र सज्जा, बालक का भावात्मक विकास और बाल-साहित्य के लेखक का दायित्व, बाल-साहित्य का प्रकाशन—बालरुचियों के सदर्भ मे, बाल-साहित्य और सृजनात्मकता, बाल-साहित्य द्वारा वैज्ञानिक अभिरुचियों का विकास, बाल-साहित्य द्वारा भाषायी कुशलता का विकास, शिक्षा मे बाल-साहित्य का स्थान, बाल-साहित्य मे बाल-गीतों का महत्व, बाल-साहित्य मे कटपुतलियों का महत्व, बाल-साहित्य का विकास तथा बाल-साहित्य का मूल्याकन। ये सभी लेख बाल-साहित्य का प्रणयन में लगे लेखक, प्रकाशक एव मूल्याकन करने वालो के मार्गदर्शन हेतु श्रेयस्कर सिद्ध होगे, ऐसी हमारी मान्यता है।

पुस्तक के दूसरे भाग मे तीन प्रमुख भारतीय भाषाओं अर्थात हिन्दी, मराठी और उर्दू के बाल-साहित्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। इन लेखो मे जहाँ एक ओर इन भाषाओं के बाल-साहित्य-लेखको की रचनाओं की चर्चा की गई है वही दूसरी ओर इन भाषाओ के बाल-साहित्य में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनो और विचारो को भी उभारने का प्रयास किया गया है।

तीसरे भाग में बाल-साहित्य के मूल्याकन हेतु तैयार किया गया मूल्याकन प्रपत्र तथा इसे प्रयोग करने के लिए वांछनीय निर्देश दिए गए है। इस मूल्याकन प्रपत्र द्वारा यथोचित सशोधन के साथ किसी भी भारतीय भाषा के बाल-साहित्य का मूल्याकन किया जा सकता है। यह मूल्यांकन प्रपत्र बाल-साहित्य क्रय करने वाली राज्य सरकारो, स्वस्थ बाल-साहित्य की सूची तैयार करने वाली सस्थाओ, पुस्तकालयों, प्रकाशकों तथा स्वय बाल-साहित्य के लेखकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगा, ऐसी आशा है।

प्रस्तुत पुस्तक द्विभाषी है। इसमे कुछ लेख हिन्दी में और शेष अंग्रेजी में है। यह पुस्तक दोनो ही भाषाओ के जानने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकेगी। मूल्याकन प्रपत्र हिन्दी में दिया गया है जिसे अनूदित करके अन्य भारतीय भाषाओं के बाल-साहित्य के मूल्याकन हेतु उपयोग मे लाया जा सकता है।

बाल-साहित्य के प्रणयन एव मूल्यांकन के प्रायः सभी बिन्दुओ को ध्यान मे रखकर आवश्यक विषयों पर लेख तैयार किए गए है। फिर भी हम यह दावा नही कर सकते कि इनके अतिरिक्त बाल-साहित्य के उत्थान हेतु अन्य सुझाव एवं विचार है ही नही। बाल-साहित्य का क्षेत्र बहुत ही विस्तृत है। अतः इससे संबंधित समस्त विषयो को समेट सकना एक अत्यन्त कठिन कार्य है।

इस गोष्ठी में नियमित रूप से भाग लेने वालो के अतिरिक्त भी जिन बाल-साहित्य विशेषज्ञों एवं शिक्षा-शास्त्रियो का सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। इनमे चंदामामा तथा बाल सखा के संपादक, राष्ट्र कवि पडित सोहन लाल द्विवेदी, डा० आर० सी० दास, डा० आत्मानन्द शर्मा, डा० राजेन्द्रपाल सिह आदि प्रमुख हैं। अत्यन्त व्यस्तता के बावजूद एक-एक सत्र की अध्यक्षता कर इन महानुभावों ने हमारा और हमारे प्रतिभागियो का मार्ग-दर्शन किया है, जिसे विस्मृत नही किया जा सकता। प्रतिभागियों में नदन के सम्पादक श्री जयप्रकाश भारती, भारत सरकार के प्रकाशन विभाग के उपनिदेशक डा० श्यामसिंह शशि, सारिका एव पराग के सपादक श्री कन्हैयालाल

नदन, आकाशवाणी के डा० हरिकृष्ण देवसरे, चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट की श्रीमती मनोरमा जफा, जामिया मिलिया इस्लामिया के डा० सैफी प्रेमी, इन्दौर विश्वविद्यालय के डा० यू० एस० चौधरी, केन्द्रीय विद्यालय भोपाल के प्राचार्य डा० हरिप्रसाद राजगुरु, पूने के हिन्दी हाई स्कूल के श्री सुधाकर प्रभु, त्रिवेन्द्रम की डा० श्रीमती अम्मल, बरेली के प्रसिद्ध बालकवि श्री निरकार देव सेवक, मैसूर के श्री सचिदानन्देया, परिषद् के डा० नन्दकिशोर जगीरा, श्री गंगादत्त शर्मा, तथा श्री आर० के० चौपडा के प्रति भी मै हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिन्होने बड़े ही विद्वतापूर्ण लेख लिखकर और गोष्ठी मे भाग लेकर उसे सफल बनाने का अथक प्रयास किया।

यह पुस्तक इन सभी बाल-साहित्य लेखको तथा शिक्षा-शास्त्रियों के सामूहिक प्रयास का प्रतिफल है। यदि पुस्तक बाल-साहित्य लेखको, प्रकाशकों, शिक्षाविदो, राज्य सरकारों तथा पुस्तकालयाध्यक्षो का किंचित् भी मार्ग-दर्शन कर सकी तो हम अपना प्रयास सफल मानेगे।

नई दिल्ली
अक्तूबर 1979

इन्द्रसेन शर्मा

Contents

भाग—दो

भाग—तीन

भाग—एक

निर्माण और मूल्यांकन

बाल-साहित्य–विषय चयन और प्रस्तुतीकरण

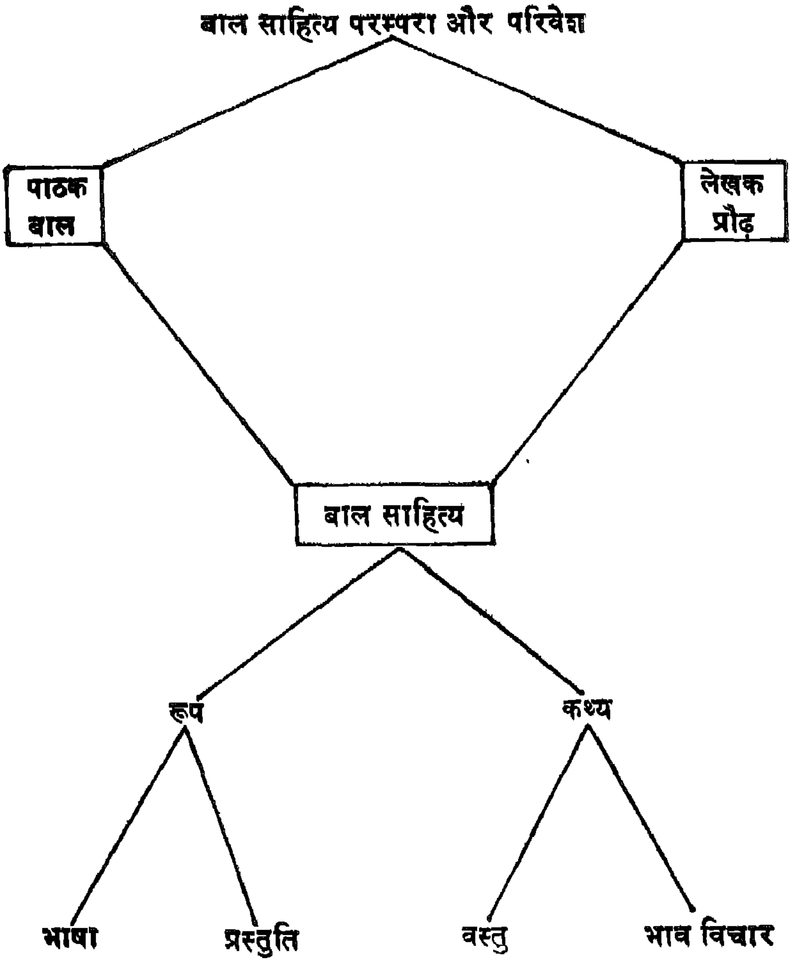
डॉ० मंजुला माथुर

बाल-मन को रंजित करने वाले लीला-व्यापार के जो भी साधन है, उनमें साहित्य भी एक है। इस संसार में आने के बाद हर बालक न केवल इस संसार के विषय में अपना दृष्टिकोण विकसित करता जाता है वरन् वह अपने लिए एक संसार की सृष्टि भी करता जाता है जो सामान्यत: बड़ों के संसार से नितान्त भिन्न होता है। उसकी कल्पना अपने अनुभव के एक विशिष्ट दायरे के इर्द-गिर्द घूमती है। बाल-मन को रंजित करने वाले साधनो मे एक ओर जहां स्वय उनकी अपनी कल्पना पर आधारित उनके द्वारा बनाई गई कलाकृतियाँ हो सकती हैं वही दूसरी ओर उन बच्चो के लिए प्रौढ़ों द्वारा तैयार की गई रचनाएँ या साहित्य भी होता है।

बालको के लिए प्रौढो द्वारा तैयार किया गया साहित्य कितना बालोपयोगी होता है, समस्या यही से शुरू होती है। समस्या का एक पक्ष तो यही है कि प्रौढ़ों के लिए साहित्य जहाँ प्रौढ़ो द्वारा ही लिखा जाता है, बालकों का साहित्य स्वयं बालकों द्वारा नही लिखा जाता। सामान्यत: बाल-साहित्य को ऐसे प्रौढ व्यक्ति लिखते हैं जो अपने बालपन को ही नही बालभाव को भी खो चुके होते हैं। इसीलिए बाल-भावहीन प्रौढ़ बाल-साहित्य के नाम पर जो कुछ लिखते है वह बालकों को न केवल अग्राह्य प्रतीत होता है वरन् वह सिद्धान्तत: अनुपयुक्त भी होता है। हिन्दी आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं मे स्वतन्त्र रूप से बाल-साहित्य लिखने की परम्परा नही रही। बाल-साहित्य के प्रौढ लेखक सामान्यत: बाल मनोविज्ञान से अपरिचित होते हैं और उनमे से यदि कुछ मनोविज्ञान से परिचित भी हुए है तो उस मनोविज्ञान से जो पश्चिम के बालको के अध्ययन पर आधारित है। पाश्चात्य बाल-मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांत सार्वभौम रूप से सभी सांस्कृतिक वर्गों पर खरे उतर सकते है परन्तु बाल-साहित्य लेखन के लिए जिस बाल-जीवन के अनुभव की आवश्यकता होती है वह पाश्चात्य मनोविज्ञान के किसी अध्ययन से प्राप्त नही किया जा सकता। भारतवर्ष में मनोविज्ञान के अध्ययन की अब अनेक संस्थाएँ हैं परन्तु इस प्रकार के अध्ययन अभी नही हुए हैं, और हुए भी है तो भारतीय भाषाओं मे अप्राप्य है, जिनमे विविध भाषायी, साँस्कृतिक और भौगोलिक वर्गों के विविध प्रकारो के बालको के सांस्कृतिक जीवन का वास्तविक चित्रण हो। ऐसी स्थिति मे पाश्चात्य मनोविज्ञान और पाश्चात्य बाल-साहित्य हमारा मार्ग-दर्शक या आदर्श हो सकता है परन्तु हमारी वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति नही कर सकता।

बाल-साहित्य लेखन की हमारी कोई प्राचीन

परम्परा नही है। पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ बाल-साहित्य लेखन की परम्परा भी इस देश मे आई और विकसित हुई। परन्तु जिस प्रकार हमारी आधुनिक औपचारिक शिक्षा व्यवस्था हमारी परम्परा और सास्कृतिक परिवेश से मेल नही खा पा रही है उसी प्रकार यद्यपि हमने पाश्चात्य आदर्श के अनुरूप बाल-साहित्य सृजन का प्रारम्भ कर लिया है तथापि वह अपने सास्कृतिक यथार्थ के अवबोध के अभाव में बहुत कुछ पराया और अयथार्थ प्रतीत होता है। इसी का परिणाम है कि भारतीय भाषाओं में लिखा जा रहा बाल-साहित्य न केवल एक खास ढर्रे में चल रहा है वरन् उसका विषय-विन्यास, प्रस्तुतीकरण, शैली आदि अनेक दृष्टियो से असन्तोषकर प्रतीत होता है। वस्तुतः बाल-साहित्य की समस्या का सीमाकन निम्नलिखित तालिका के आधार पर किया जा सकता है—



सामान्यत. बाल-साहित्य के मूल में बच्चों के मानसिक विकास, मार्ग-दर्शन, जिज्ञासा-पुष्टि, कल्पना-प्रस्फुटन और रुचि-परिष्कार आदि को प्रयोजन के रूप मे स्वीकार किया जाता है। परन्तु प्रश्न उठता है कि क्या हम वस्तुत: अपने देश के विविध आर्थिक, सामाजिक और सास्कृतिक वर्गों मे विभाजित बाल-समाज को भली-भाँति जानते है और उक्त प्रयोजनों को दृष्टि मे रखकर बाल-साहित्य उपलब्ध करा रहे है ?

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय परिवेश मे जन्मे और पनपे बालको के मानसिक और बौद्धिक विकास का वस्तुपरक दृष्टि से अध्ययन नही हुआ है और न हो बालको के भाषा-अधिगम के क्रमिक विकास का ही कोई महत्वपूर्ण अध्ययन हमारे सामने है। अत विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से यह कहना असभव है कि हमारे बालको को किस अवस्था मे इतना भाषिक ज्ञान होता है या उनकी क्या चिन्तन क्षमता है, क्या सकल्पना या अभिरुचि है। भारतीय विश्वविद्यालयों के मनोविज्ञान और भाषाविज्ञान के विभागो से जिस प्रकार का शोध कार्य प्रकाशित हुआ है उससे विभिन्न सस्कृतियो में पल रहे और विभिन्न भाषाओ को बोलने वाले विविध प्रकार के बालको की भाषिक क्षमता, विचार क्षमता, कल्पनाशक्ति, या अभिरुचि आदि के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी कहना असभव है।

इस प्रकार के अनुसधान के अभाव में वाछित सुरुचिपूर्ण बाल-साहित्य के सृजन के मार्ग मे अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। किन्तु इसका अर्थ यह नही कि जब तक अनुसधान के द्वारा इन बातों की खोज की जाए तब तक बाल-साहित्य के सृजन पर रोक लगा दी जाए। बाल-साहित्यकार यदि स्वय को बालको की प्रयोगशाला का अग मानकर उनके मानसिक धरातल पर उतर आए तो एक सीमा तक इस समस्या का समाधान मिल सकता है। चाहे विषय का चयन हो अथवा प्रस्तुतीकरण और भाषा, लेखक की आँखो के सामने वह बालक सदा रहना चाहिए जिसके लिए वह लिख रहा है। इसी उद्देश्य से बाल-साहित्य लिखते समय कतिपय बातो का ध्यान रखना चाहिए, जिनका विवेचन आगे किया जा रहा है।

विषयवस्तु का चयन

'सुनियोजन' प्रत्येक कार्य को एक गरिमा प्रदान करता है। बाल-साहित्य लिखते समय रचनाकार को एक विशेष प्रयास करना होता है—अपने मस्तिष्क को बाल-रुचि के अनुकूल ढालने का, अपनी भाषा को बाल-समझ के अनुरूप बनाने का। उसे अपनी कलम मे वह जादू भरना होता है जो बच्चो की खिलखिलाहट को वाणी का रूप दे सके, उनकी कल्पना को उडान दे सके, उनमे स्फूर्ति और मनोरजन के भाव का सचार कर सके। इन सब बातो के लिए आवश्यक है कि वह लिखने से पूर्व विषय चयन सबधी कतिपय महत्वपूर्ण बातो का ध्यान रखे—

(1) बालको का मानसिक स्तर
(2) पठन रुचि
(3) परिवेश
(4) उपयोगिता
(5) आयुवर्ग (बाल-वर्ग क्या एक ही है ?)

(1) बालको का मानसिक स्तर

मानसिक स्तर को ध्यान में रखते हुये बाल-साहित्य की तीन श्रेणियाँ हो सकती है—पहली श्रेणी मे 6-8 वर्ष तक की आयु के बच्चो के लिए लिखा गया साहित्य रखा जा सकता है। दूसरी में 9-12 वर्ष की आयु के बच्चों का साहित्य और तीसरी में 13 से 16 वर्ष तक की आयु के बच्चो का साहित्य। विषय चयन के समय लेखक यदि इस बात को ध्यान मे रखे कि वह किस आयु वर्ग के लिए लिखने जा रहा है तो उसके अनुकूल ही वह भाव और भाषा के सबध में सोच-विचार कर सकेगा। 6 से 16 वर्ष तक के बालकों का मानसिक स्तर

एक-सा नही होता। जो विषय 6 वर्ष के बच्चे के लिए रुचिकर हो सकता है वह 16 वर्ष के बच्चे के लिए नही। प्राय लेखक के मस्तिष्क मे इस तरह का अन्तर नही होता। अधिक से अधिक वह प्रौढ साहित्य के विषयो से बाल-साहित्य के विषयों को अलग भर कर लेता है और किसी एक विषय को चुनकर उस पर लिख डालता है, और सोच लेता है कि उसने बच्चो के लिए कहानी या कविता लिखी है। यही कारण है कि आज हमारे बाल-साहित्य मे 6-8 वर्ष तक के बच्चो के समझने-बूझने के लिए प्राय बहुत कम साहित्य देखने को मिलता है। अतः श्रेयस्कर रहे यदि लेखक विषय चयन करते समय जिस बालक के लिए वह लिख रहा है, उसके मानसिक स्तर को ध्यान में रखे।

(2) पठन रुचि

बालको की रुचि का क्षेत्र सीमित न होते हुए भी बडा विचित्र होता है और इस विचित्रता से आत्मसात कर जो लेखक अपने विचारो को रचना मे ढालता है, लिखने के लिए विषय का चयन करता है, वही बाल-रुचि के अनुकूल लिख पाता है। बच्चो की रुचि उडन-खटोले में बैठकर चाँद की सैर करने मे तो होती है, अमेरिका के अन्तरिक्ष सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रयोग मे नहीं। उसे खिलौनो के लिए परस्पर झगड़ने में आनन्द आ सकता है, राजनीतिक दाव-पेचों मे नही। रचनाकार यदि उसकी इस रुचि को समझते हुये, लिखते समय विषय को चुने तो उसकी रचना बच्चों के अधिक समीप होगी।

यद्यपि इस दृष्टि से विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एव धार्मिक परिवेश मे पले-पनपे बच्चो की पठन रुचियों का सर्वेक्षण-अध्ययन नहीं किया गया है तथापि बालको के सामीप्य लाभ और थोडे व्यक्तिगत प्रयास से लेखक स्वयं इसका पता लगा सकता है।

(3) परिवेश

पठन-रुचि और बालक के परिवेश मे बहुत समानता है। परिवेश मे न केवल वे वस्तुएँ और ज्ञान जो उसके चारों ओर के वातावरण मे बिखरा पडा है, अपितु वह सब विषय और कल्पनाएँ भी समाहित है जो उसने नानी-दादी से सुनी है और जिन्हे नीद के हिलोरो के साथ भोगा है। यही कारण है कि बालक की दृष्टि उसके अपने वातावरण मे तो रहती ही है साथ ही वह परियों के साथ उड़ान भी भरता है, पशु-पक्षियों के साथ गाता, चहकता, महकता भी है। उसे भौतिक जगत के थपेड़े और काल्पनिक जगत में उन्मुक्त विचरण के साथ ही वास्तविक जीवन मे सम्बल देने के लिए मनुष्य मात्र को मार्ग दिखाने वाले सूत्र और जगत की क्रूरताओं को झेलकर सोने से निखरने वाले जीवन मूल्य भी चाहिएँ। बाल-साहित्य के लेखक को बालक के परिवेश का विस्तार से अध्ययन कर विषयो का चयन करना होगा।

(4) उपयोगिता

बाल साहित्य में मनोरजन का तत्व जितना अधिक होगा वह बच्चों के लिए उतना ही आकर्षक होगा। किन्तु 'मनोरजन तत्व' के निर्वाह मे 'उपयोगिता' की अवहेलना न हो इसे दृष्टि मे रखना लेखक के लिए आवश्यक है। छोटे बच्चो की रुचि फूल, तितली, गुड़िया-गुड्डे मे होगी पर इनके माध्यम से लेखक उन्हे क्या सिखा रहा है यह विचारना भी आवश्यक है। यह सिखाना अथवा रचना की उपयोगिता प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष रूप मे रचना के अतस मे छिपी हो, यही अनिवार्य है। विषय ऐसा होना चाहिए जो बच्चों को कुछ नया सिखा जाए। ऐसे विषय-क्षेत्र जो उसके अनुभव से अछूते है पर जिनके विषय में जानकारी उसके लिए लाभकारी है, बाल-साहित्य मे सम्मिलित किये जाने चाहिएँ।

बाल-साहित्य के विषय से सम्बन्धित कुछ विशेष बाते और भी ध्यान रखने की है जिनका विवेचन आगे किया जा रहा है।

चयनित विषय कैसा हो

(क) मौलिक

किसी भी विषय को अलग-अलग रचनाकार भिन्न-भिन्न ढग से प्रस्तुत कर सकते है। पर ऐसे विषय जो बिल्कुल ही अछूते हो, जिन पर किसी साहित्यकार की लेखनी न चली हो, यदि चुने जाए तो वे बच्चो के ज्ञान-भण्डार मे वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होगे। घिसे-पिटे विषयो पर ही शब्दो के हेर-फेर से कुछ कह जाना न लेखक के लिए सम्मानजनक है न बच्चों के लिए उपयोगी । नया, मौलिक विषय बच्चों को आकर्षित करता है। यदि एक बार उसकी पढने की रूचि न भी हो तो भी वह उसे नया जान-कर पढने में रुचि लेगा और जब पढ़ेगा तो उसके ज्ञान भण्डार मे स्वत: वृद्धि होगी ही। ऐसे नए विषय चारो ओर वातावरण मे बिखरे पडे है जिन्हे चुनने के लिए पैनी दृष्टि की आवश्यकता है।

(ख) सही तथ्य निरुपण

विषय की मौलिकता के साथ ही सही तथ्यो का निरुपण भी आवश्यक है। जिस तथ्य की सही जानकारी स्वय लेखक को न हो उसे गलत रुप मे देने से अच्छा है उसे दिया ही न जाए। विशेष रुप से विज्ञान सबधी विषयो पर लिखते समय लेखक को यदि विज्ञान का सही ज्ञान नही है तो वह किसी वैज्ञानिक से सहायता ले सकता है। कुछ भी और कैसे भी लिख देना बालकों के लिए अहितकर है।

(ग) भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा

भाषा का भावों और विचारो के अनुकूल होना अत्यन्त आवश्यक है। बाल साहित्य का कार्य भाषा सिखाना नही अपितु पाठ्यपुस्तको द्वारा सीखी गई भाषा को विभिन्न सदर्भो के माध्यम से परिपक्व बनाना है। किन्तु यदि भाषा बालक के लिए कठिन होगी तो विषय का आकर्षण भी समाप्त हो जाएगा। अत: जहाँ विषय के चयन मे आयुवर्ग का ध्यान रखना आवश्यक है वहीं भाषा की दृष्टि से भी पुस्तक लिखते समय बालक के भाषा ज्ञान को दृष्टि मे रखना होगा।

(1) विषय और भाषा में सामंजस्य ?

बालको की रुचि और आयु के अनुकूल विषय का चुनाव कर लेने के बाद भी उसे गूढ, कठिन भाषा दी जाए तो उसकी उपयोगिता, उसकी महत्ता वही समाप्त हो जाती है । बात परियो की हो और भाषा भारी-भरकम, परिचय महान प्रतिभाओं का हो और भाषा मे एक गरिमा न हो, यह असामजस्य पूरी कृति के स्वरूप को गड़बडा देता है। कृति की प्रभावमयता बहुत सीमा तक विषय और भाषा के सामंजस्य पर ही निर्भर करती है।

(2) आयु विशेष के बालकों के स्तरानुकूल

बालक के पठन एव लेखन कौशलो के विकसित करने के लिए बाल-साहित्य एक अच्छा साधन है, इसमे सन्देह नही । किन्तु यह साहित्य, बच्चे को भाषा सिखाने-पढाने की जिम्मेदारी ले, यह अनुचित है। अत: बाल साहित्य के रूप मे बच्चे को जो भी जानकारी ज्ञानवर्धन अथवा मनोरजन हेतु दी जा रही है वह उसकी भाषा से दूर न हो, लेखक को इस बात का ध्यान रखना चाहिए। बच्चो की अपनी भाषा से यहाँ अभिप्राय उनके मानसिक स्तर या कक्षा स्तर के अनुकूल भाषा से है। लेखक यदि सोच कर बालक के शब्द भण्डार मे वृद्धि करने हेतु अथवा भाषायी प्रयोग सिखाने के लिए अपनी रचना मे बालक से अपरिचित भाषा भरता है तो वह भूल करता है। वस्तुत: यह कार्य तो अनायास ही हो सकता है। इसके लिए किया गया प्रयास रचना को अनावश्यक रुप से बोझिल बनाता है जिससे रचना नीरस हो जाती है।

(3) व्याकरण संबंधी दोषों से मुक्त

जहां बच्चों के स्तरानुकूल भाषा प्रयोग की बात की जा रही है वहाँ यह बात भी स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि इस साहित्य मे उन्हे चाहे भाषा संबंधी नया कुछ न भी दे पाए पर जो कुछ उनके पास है उसे ही सही रूप में दे तो पर्याप्त है। यदि बाल-साहित्य की भाषा व्याकरण संबंधी दोषों से मुक्त है, उसकी वाक्य संरचना उपयुक्त है तो बालक तो स्वयं बहुत कुछ सीख जाएगा। व्याकरण संबंधी दोष होने से तो पाठ्यपुस्तको के माध्यम से सीखी गई भाषा मे भी व्यवधान आ जाएगा।

(घ) प्रस्तुतीकरण

बालको के मानसिक स्तर, पठन रुचि, उनके लिए उपयोगी और पर्यावरण के अनुकूल विषय चयन करने के पश्चात उसे अभिव्यक्त करने का भी अपना एक ढंग होता है। यही प्रस्तुतीकरण है। बाल-साहित्य मे प्रस्तुतीकरण का पक्ष बहुत प्रबल होता है। उपयुक्त विषय चयन कर लेने पर भी यदि उसकी प्रस्तुति उचित रूप मे न हुई तो वह साहित्य बालको के लिए उपयोगी नही हो सकता। अत: चयनित विषय को बडे ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए। देखना चाहिए कि क्या विषय को प्रस्तुत करने का तरीका विषय के अनुकूल है? इसी प्रकार साहित्य की विधा का चयन भी विषय के ही अनुरूप होना चाहिए। वार्तालाप की भाषा पात्रो के अनुकूल और साथ ही वाक्य संरचना तथा भाषा का उस आयुवर्ग के अनुकूल होना अनिवार्य है जिसके लिए पुस्तक लिखी जा रही है। विषय इस ढंग से प्रस्तुत किया जाना चाहिए कि उसमे बालको की कल्पनाशक्ति जागृत करने की क्षमता हो और उनमें सृजनशीलता को उभार सके। पुस्तक को आद्योपान्त पढने मे बालको की रुचि समान रूप से बनी रहे, यही प्रस्तुतीकरण की सबसे बडी कसौटी है।

(च) साहित्यिक विधा

साधारणतया यह माना जाता है कि बालकों को कहानी की विधा सर्वप्रिय है। किन्तु यह भी मानना ही पडेगा कि विधा का विषय के अनुकूल होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके साथ ही यह सही है कि बालको को केवल कहानी पढाते रहने से साहित्य की अनेक अन्य विधाओ से उनका परिचय नही हो सकेगा। आधुनिक भारतीय भाषाओ मे उपलब्ध बाल-साहित्य में कुछ साहित्यिक विधाओ को बिल्कुल ही नहीं देखा जाता है। इनमे कुछ विधाएँ ऐसी है जिनमे बडे ही रोचक ढंग से बालोपयोगी सामग्री दी जा सकती है। ये विधाएँ है पत्र, डायरी, रिपोर्ताज, साक्षात्कार आदि। कतिपय बालोपयोगी विषयो को इन विधाओ के माध्यम से बडे ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है और बालकों को इन विधाओं का परिचय भी कराया जा सकता है। अत: बाल-साहित्यकारो को जहाँ विषय के अनुरूप विधा का चयन करना चाहिए वही कुछ नवीन विधाओ से भी बालको का परिचय कराना चाहिए।

(छ) शैली

शैली जहा विषय के अनुरूप हो वही उसका आकर्षक, सरल और प्रवाहमयी होना भी आवश्यक है। सहजता और स्वाभाविकता शैली के अनिवार्य गुण है। यह बात सही है कि प्रत्येक लेखक की अपनी शैली होती है किन्तु लेखक को, विशेष रूप से बाल-साहित्य लेखक को, अपने सामने उन नन्हे-मुन्ने पाठको को रखना होगा जिनके लिए वह लिख रहा है। अत उसकी शैली जितनी ही सहज और स्वाभाविक होगी, बालकों के लिए वह उतनी ही रुचिकर होगी। यदि उसमे सरलता और प्रवाहमयता विद्यमान है तो आद्योपान्त वह बालको की रुचि बनाए रखने मे सहायक होगी।

(ज) सामग्री का गठन

प्रस्तुत सामग्री का गठन, चाहे वह पुस्तक में हो अथवा कहानी विशेष में, इस प्रकार से होना चाहिए कि उसमे क्रमबद्धता बनी रहे। प्रस्तुत सामग्री मे दिए गए सभी तथ्यो तथा घटनाओ आदि मे परस्पर

सबंध सूत्र हो। सभी तथ्य तथा घटनाएं आपस में इस प्रकार से गुम्फित हों कि उनमें एक तारतम्य हो और वे कपड़े में लगी थिकली के समान न लगें। विषय के सभी पक्षों में एक संतुलन होना और आदि, मध्य, तथा अन्त में संतुलन होना भी सामग्री के गठन की दृष्टि से आवश्यक है।

निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि यद्यपि बाल-साहित्य का लेखक किसी चीज से बँध-कर नहीं चलता तथापि वह यदि ऊपर बतायी गई बातों को अपने ध्यान में रखे तो एक सोद्देश्य बाल-साहित्य का सृजन कर सकता है। इन सब बातों का अर्थ बाल-साहित्यकार पर किसी प्रकार का कोई बंधन लगाना नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि ये सभी पक्ष और निकष उसे एक दृष्टि प्रदान कर सकते हैं जो उसके लेखन में निखार ला सकती है और उसे बालकों के लिए अधिक उपयोगी और रुचिकर बना सकती है। यही बाल-साहित्य का उद्देश्य भी है।

बाल-साहित्य की रचना-प्रक्रिया

डा० इन्द्रसेन शर्मा

(लगभग एक चौथाई सदी तक अध्यापन कार्य करने के बाद श्री गगादत्त शर्मा पिछले सोलह वर्षो से बाल-साहित्य के सृजन पक्ष से प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से जुड़े रहे है। प्रस्तुत है बाल-साहित्य की रचना-प्रक्रिया के सबंध मे उनसे लेखक की भेंट वार्ता।)

लेखक : शर्माजी, आप मूलत. प्राथमिक कक्षाओं के छात्रो के लिए पाठ्यपुस्तक लेखन से जुड़े रहे है, पर मै यह मानकर चलता हूँ कि पाठ्यपुस्तक और बाल-साहित्य की रचना प्रक्रिया एक ही है। क्या राय है आपकी?

शर्माजी : कोई मतभेद नही इस विषय में। यद्यपि दोनो प्रकार के लेखनो मे अन्तर है, परन्तु इनकी रचना प्रक्रिया लगभग समान ही है। पाठ्य-पुस्तक लेखन एक सचेष्ट प्रयास है। उसमे एक प्रतिबद्धता है, अकुश है—विशेषत. पाठ्यक्रम का अंकुश। बाल-साहित्य भी सचेष्ट है परन्तु उसमे प्रतिबद्धता अपेक्षतया कम है। अत: वह अधिक लचीला, अधिक सहज, अधिक हृदय-ग्राही, रोचक और प्रभावशाली बन जाता है।

लेखक : यदि पाठ्यपुस्तक को भी बाल-साहित्य के अन्तर्गत मान ले तो इसका दायरा बढ़ नही जाएगा ?

शर्माजी · दायरा बढ़ाने से ही सन्तोष हो तो जरूर बढ जाएगा। पर इससे बाल-साहित्य को पाठ्यपुस्तक की औपचारिकता का ग्रहण लग जाएगा। मैं दोनो को पृथक किन्तु एक-दूसरे का पूरक मानता हूं। दोनो मे सिद्धान्त और क्रिया का सम्बन्ध है।

लेखक इसे थोडा और स्पष्ट करेगे ?

शर्माजी : इसे यूँ कहिये कि पाठ्यपुस्तक का कार्य जहाँ समाप्त होता है, वहाँ बाल-साहित्य का कार्य शुरू होता है। पाठ्य-पुस्तक से प्राप्त ज्ञान का विस्तार बाल-साहित्य से होता है। अध्यापन की भाषा मे पाठ्य-पुस्तक कण्टेण्ट हैं तो बाल-साहित्य एक-सरसाइज। बिना एकसरसाइज के कण्टेण्ट ठीक तरह से उभर नही पाता। पाठ्य-पुस्तक ससीम है और बाल-साहित्य असीम। पाठ्यपुस्तक क्लोज्ड है तो बाल-साहित्य ओपिन। यदि दोनों की रचना प्रक्रिया में अन्तर देखना चाहते है तो यही उनके अन्तर का आधार है।

लेखक · परन्तु इनकी रचना-प्रक्रिया तो एक सी ही है, जैसा कि आपने अभी कहा है।

शर्माजी : मैने कहा है कि इनकी रचना-प्रक्रिया लगभग समान है। आप लगभग शब्द पर

ध्यान दे। मेरा कथन दोनों के अन्तर को नकारता नही है।

लेखक : तो फिर केवल बाल-साहित्य की रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालने का प्रयास करेगे आप ?

शर्माजी वारिज भाई, बाल-साहित्य का सृजन बड़ा श्रम-साध्य काम है। इसके लिए लेखक को तीन बाते मूलतः ध्यान मे रखनी है। पहली यह कि वह क्यो लिख रहा है, किस उद्देश्य से लिख रहा है ? यह निश्चय कर लेने के बाद कि वह किस उद्देश्य से लिख रहा है, यह जानना जरूरी है कि वह क्या लिखे और तीसरी कि वह कैसे लिखे ?

लेखक . ये तीनो बाते तो सभी प्रकार के लेखन पर लागू होती है।

शर्माजी · दुरुस्त है, पर बाल-साहित्य पर विशेष तौर से क्योंकि इसमे किंचित स्खलन ही सब कुछ गुड़-गोबर कर देगा। यदि हम अब तक प्रकाशित बाल-साहित्य को केवल उद्देश्य की कसौटी पर ही कस ले तो अधिकांश व्यर्थ सिद्ध हो जाएगा। केवल कलम उठा जबर्दस्ती मूड बनाकर अनाप-शनाप लिख मारने से ही सुष्ठु बाल-साहित्य नही बन जाएगा। सम्यक उद्देश्य निर्धारण ही रचना-प्रक्रिया की सफलता है। यही रचना-प्रक्रिया का प्रारम्भ है।

लेखक मैं इस संबध मे आपका अनुभव जानना चाहूँगा। आप लेखन का उद्देश्य निर्धारण किस प्रकार करते है ?

शर्माजी : बालको की आवश्यकताओ और पठन रुचियों का अध्ययन करके। यह अध्ययन शोध-परक भी हो सकता है, और अनुभव-जन्य भी। मै समाज को नजदीक से देखने मे विश्वास करता हूँ। मैं अपने बालकों को देखता हू, उनकी भावनाओं को समझने की चेष्टा करता हूँ। मै उनके भविष्य की कल्पना करता हूँ। मै उन्हे जो और जैसा बनाने की कल्पना करता हूँ, वही मेरे लेखन का उद्देश्य बन जाता है।

लेखक : आप शायद मूल्यो के दायरे में जा रहे है ?

शर्माजी · नही, मूल्यो की बात बाद मे आती है। पहले तो जीवन है। मै जीवन की बात कर रहा हूँ। बालक बहुत कुछ जानना चाहता है, सीखना चाहता है, अपनी जिज्ञासा शान्त करना चाहता है, रोचक सामग्री पढना चाहता है, अपनी अस्मिता बनाए रखना चाहता है, अपने चारो ओर फैले ससार को निरखना-परखना चाहता है। दूसरो मे अपनी झांकी देखना चाहता है। इसके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी बाते भी है जिन्हे एक सामाजिक एवं अभिभावक या शिक्षक के नाते मैं उन्हे देना चाहता हूँ। बस मेरे लेखन के लिए यह सब उद्देश्य के रूप मे उपस्थित हो जाता है और मेरी लेखनी को विषय मिल जाता है। मैं क्यो लिखूँ और क्या लिखूँ इन दोनो बातो का उत्तर मुझे मिल जाता है। पर तब इसके लिए मुझे स्वयं बाल-रूप, बाल-स्वभाव, बाल-वृत्ति धारण करना अनिवार्य हो जाता है जो लेखन के साथ न्याय करने के लिए बहुत आवश्यक है। यह बाल-साहित्य की लेखन-प्रक्रिया का प्रथम सोपान है।

लेखक : बात अपने मे काफी स्पष्ट है। पर, इसके बाद ? इसके बाद आप लिखना शुरू कर देते है अथवा कुछ और भी तैयारी करते है ?

शर्माजी : नही, एकदम लिखना शुरू नही करता।

मैं विषयानुकूल विधा का चयन करता हूँ। बाल-साहित्य अधिकांशतः वर्णनात्मक है। अथवा कथा-परक है। लेखक अन्यान्य विधाओं का, शैलियों का प्रयोग कम करते है। बालकों को ज्यादातर कहानियाँ पसन्द है। पर, विषय को अन्य रोचक विधाओं मे भी बाँधा जा सकता है। डायरी, पत्र, साक्षात्कार, रिपोर्ताज आदि अनेक विधाएँ अभी अछूती पड़ी है।

लेखक . अच्छा, विधा चयन के बाद आप क्या करते हैं ?

शर्माजी : उसके बाद मै कथ्य की रूपरेखा बनाता हूँ। सन्दर्भ-ग्रन्थो से कथ्य की प्रामाणिकता की जाँच करता हूँ। उसमे नवीनता खोजता हूँ। पुराने को नये सन्दर्भ देने का प्रयत्न करता हूँ। आज के तर्कशील बालक को सदा ध्यान मे रखता हूँ। फिर लिखता हूँ। लिखे हुए को पढ़कर सुधारता हूँ। भाषा को अधिकाधिक बोधगम्य, प्रेषणीय और प्रभावशाली बनाने के लिए बार-बार दूसरों को पढ़कर सुनाता हूँ। उनके मान्य सुझावो को स्वीकार कर सशोधन करता हूँ और तब जाकर कही एक चीज तैयार होती है।

लेखक : बहुत श्रम साध्य है यह सब !

शर्माजी : सो तो है ही, पर यह निहायत जरूरी है। मैं सिद्ध हस्त लेखक नही हूँ न। मेरा पाठ्यपुस्तक लेखक भी मुझ पर हावी रहता है। मेरा शिक्षक भी मुझे चेतावनी देता रहता है। बहरहाल, मै लेखक को माँजने मे विश्वास करता हूँ। मेरी चेष्टा यह रहती है कि मेरी लेखनी से कोई ऐसी बात बालक के पास न चली जाए जो उस पर दुष्प्रभाव डाले। लेखक का एक गलत वाक्य बहुत खतरनाक और जहरीला साबित हो सकता है।

लेखक क्या यह बहुत आदर्श स्थिति नही है। इससे जगत के विधि-निषेधमय व्यवहार का प्रचार नहीं कर रहे है आप ?

शर्माजी . आप चाहे जो समझे। पर बालक को जगत के नाना व्यवहारो से परिचित कराने की आकांक्षा रखते हुए भी मैं चाहता हूँ कि उसे जगत की कुरुपताओ—विभीषिकाओ से दूर रखा जाए। उसकी पठन रुचि के उत्तरोत्तर विकास के लिए यह आवश्यक है। जगत की सच्चाई तो उसके सामने आएगी ही। मै और आप इससे उसे बचा नही सकते। पर अभी वह बच्चा है, कोमल हृदय है, संवेदनशील है। उसे वह सब दिया जाए जो स्वस्थ हो, सुन्दर हो, शिव हो, आशाप्रद हो, उत्साहवर्धक हो।

लेखक : रचना-प्रक्रिया मे विषय के प्रस्तुतीकरण का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। इस पर भी प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ?

शर्माजी : प्रस्तुतीकरण ऐसा हो जो बालक को बाधने मे समर्थ हो। आज का बालक 'एक था राजा, एक थी रानी' वाली शुरूआत नही चाहता। अत इस विषय में भी लेखक को नये प्रयोग करते रहना चाहिए, विशेषकर विषयवस्तु को शुरू करने मे।

लेखक : बेहतर हो यदि आप एक दो उदाहरण दे सके।

शर्माजी · उदाहरण ? लो भाई, उदाहरण भी लो—

सड़ाक्।

'महात्मा गाधी की जै ऽऽ'

सड़ाक्

'भारत माता की जै ऽऽ'

सडाक्

'विदेशी सरकार का नाश हो'

सड़ाक्, सड़ाक् तेल मे भीगी बैते पड़ती

रही। प्रत्येक बैत पर बालक नारे लगाता रहा—अविचलित, अकम्पित।

यह बालक था चन्द्रशेखर—वही चन्द्रशेखर—जो बाद में चलकर चन्द्रशेखर आजाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तब उसकी उम्र थी केवल चौदह साल।

लेखक : बहुत सुन्दर। बहुत थ्रिलिंग। शर्माजी, रचना-प्रक्रिया के बारे में इसके अतिरिक्त और क्या कहना चाहेंगे आप ?

शर्माजी : बहुत सी बातें हैं वारिज भाई। बात यह है कि आज तो लेखक छपास के भूखे है और प्रकाशक छापने के। जो छप जाता है वह बिक जाता है। सब धान सत्ताईस पसेरी। भाई, असल बात तो तब आती है जब पुस्तक प्रेस मे जाती है। यह लेखक की रचना-प्रक्रिया का ही दायित्व है कि वह देखे किताब अच्छी छपे। उसके चित्र सार्थक हों, आकर्षक हों, सुरुचिपूर्ण हों। पुस्तक मे वर्तनी सबधी अशुद्धियाँ बिल्कुल न हों। पुस्तक की जिल्द अच्छी हो। यदि इन बातो की सावधानी न बरती जाए तो अच्छे से अच्छा लेखक भी पिट जाता है। इस सबंध में एक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है कि लेखक तथा प्रकाशक दोनो ही इस बात को भली प्रकार समझ लें कि बालक उनका रज्जाक है, अन्नदाता है। उसके प्रति निष्ठा, लेखन तथा प्रकाशन की पहली और अनिवार्य शर्त है।

लेखक : इसका निर्णय कौन करेगा ?

शर्माजी : इसका निर्णय करेंगे आप—आप जो बाल-साहित्य के मूल्यांकन का काम कर रहे है। यदि आप नही करेंगे तो इसका निर्णय बालक करेगा—बालक। वस्तुत: हमारे बाल-साहित्य मे आज एक भी ऐसी पुस्तक नहीं जिसके आठ-दस संस्करण भी निकले हो। मैंने-आपने लिखा, इसने-उसने छाप दिया। एक दो संस्करण बिक गए—थोडी बहुत कमाई होनी थी सो हो गई। 'ऐलिस इन वंडरलैंड' या 'मिकी माऊस' जैसी रचना दे सके है हम लोग ?

लेखक : हमारे यहाँ पाठको की भी कमी है, यह बात तो आप स्वीकार करेंगे ही।

शर्माजी : नहीं, हरगिज नही। पढने को कुछ हो भी तो। 'चन्द्रकान्ता सन्तति' के पाठक कम थे? किस्सा 'तोता-मैना' के पाठक कम थे? प्रेमचन्द के पाठक कम है ? पठनीय को कौन नही पढ़ेगा, कौन नहीं पढना चाहेगा?

लेखक : इस सबध मे एक अन्तिम प्रश्न और। वह यह कि क्या बाल-साहित्य के लेखकों को प्रशिक्षण देकर तत्सबंधी रचना-क्रिया से अवगत कराया जा सकता है ?

शर्माजी : कराया भी जा सकता है और नही भी कराया जा सकता है। लेखन तो ऐसी कला है जो हर किसी का हिस्सा नही। हाँ, जिस किसी का हिस्सा है, उसे प्रशिक्षण से जरूर लाभ होगा। परन्तु, यह काम आसान नही। मेरा सुझाव तो यह है कि आप प्रक्षिक्षण की बात को मन से निकाल दे क्योंकि पिछले सोलह वर्षों से देखता आ रहा हूँ कि प्रशिक्षण से कोई लेखक तैयार नही हुआ। जो हुआ है, वह अपनी लगन और अध्यवसाय से ही हुआ है। हो सकता है कि मै गलत कह रहा हूँ, पर मै यही मानता हूँ ?

लेखक : शर्माजी, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। काम की काफी बाते हो गई।

शर्माजी : यदि ऐसा है तो बडी प्रसन्नता की बात है। पर इस सम्बन्ध मे भी एक बात कहना चाहूंगा। वह यह कि आप परिषद् की ओर से सरकार को सुझाव दे कि बाल-साहित्य को प्रोत्साहन देने के लिए प्रका-

शकों को कहा जाए कि वे अनिवार्यतः दस या बीस प्रतिशत बाल-साहित्य छापें। उनको कागज का कोटा रिलीज करते समय भी यह शर्त लगाई जा सकती है। दूसरे, प्रत्येक स्कूल में चाहे वह प्राथमिक हो या माध्यमिक या उच्चतर माध्यमिक, प्रचुर बाल-साहित्य रखना अनिवार्य कर दिया जाए। मैं समझता हूँ कि बालवर्ष के नाम पर परिषद् इतना तो कर ही सकती है।

लेखक : सुझाव सुन्दर है। दोनों सुझाव व्यावहारिक भी है। इनसे बाल-साहित्य को प्रोत्साहन मिलेगा, यह निश्चित है। मैं इस विषय में भरसक प्रयत्न करूँगा। अच्छा, नमस्कार।

शर्माजी : नमस्कार बन्धु।

मैं अपनी ओर से इतना ही कहना चाहूँगा कि किसी बाल-साहित्य के लेखक को प्रशिक्षण की आवश्यकता भले ही न हो किन्तु कुछ बातें ऐसी अवश्य हैं कि लेखक यदि उनका ध्यान रखे तो बाल-साहित्य निखरेगा, वह सोद्देश्य होगा और होगा बालकों पर उसका वाछनीय प्रभाव भी।

Reading Interest in Children's Literature

K. SACHIDANANDAYA

Literature has a unique importance in individual and national life It is the essence of the culture of the country. It is the main path for the development of the social, economic and political affairs of the country. Literature is related to and directly concerned with the human heart, and its main task is to improve humanity. Whereas science and technology aim at improving the materialistic world, literature aims at improving the social and cultural aspects of the world. Instead of solving the problems of human beings and improving the situation for the better, science and technology create more confusion affecting the peace of mankind The pen is mightier than the sword, the world of words is larger and is more powerful than the physical world.

Literature is an indivisible whole like life. But for the purpose of that study it has been divided into different branches. One indispensable branch of literature is children's literature. We say that childhood is the most important stage in one's life. It is of this stage that the development of personality depends. In the same way children's literature is the most important not only from the point of view of improving the ability of children in literature but also to improve literature as a whole.

The following are the salient features of children's literature It

1. touches the tender hearts of the children and places indelible impressions on them,
2. helps to shape the destiny of the children;
3. helps in the assimilation of ideas;
4. plays a key-role in life making and character building;
5. will soften, polish and check the instincts of fear, love, jealousy etc
6. provides better avenues to acquire more and more knowledge of the world;
7. helps to train the mind through vision and hearing;
8. develops reading habits in children and creates more and more concepts with perfection;
9. entertains, gives pleasure and provides mental satisfaction.

In the light of these important features of children's literature, I intend to discuss the reading interests in children's literature,

how, where, and what is the effect of it. I would like to explain the word 'Interest' before initiating discussion on it

Interest is an offshoot of curiosity and it develops as the curiosity increases. Curiosity is an instinct of human being and it is a natural phenomenon. But interest is neither an instinct nor a natural faculty Interest can be created and sustained in a particular way and direction. Interest leads to good attitude and to aptitude. In other words interest provides mental training When a child gets a suitable answer to its question, then the curiosity of the child increases and at the same time the interest of the particular matter for which the question was asked, is also strengthened naturally The child goes on questioning and acquires more curiosity. This leads to develop better interest on it.

The progress of the interest in a particular matter is based on the motivation given by the parents, peers, teachers and the environment In olden days our grandmothers used to narrate stories of children's interest The Ramayana, the Mahabharata etc were also told as simply as the children could understand Sometimes, stories of wonder, adventure, soldiers, national leaders and scientists were told in a manner understandable to young children. Naturally children who listened to these narrations could get more information and knowledge about life. This knowledge and experience would shape their personality without hurdle. For example, Shivaji and Ashoka. But now-a-days, due to the complexity of modern civilization people are too busy to keep abreast of changing conditions and are not finding enough leisure either to narrate or hear stories. Fortunately, printing technology has come as a boon to the development of children's literature. It helps children's literature to act as substitutes to grandmother. The stories of various types and on different subjects are being printed and published Every language has got a large number of books for children People who have made a name in the field of literature have contributed their own mite for the development of children's literautre. For example, Dr Karanth, Dr. K.V.P. Some of the firms are also publishing purely children's literature, for example I B H., 'Bharath Bharathi' and some magazines are specifically children's magazines, for example, 'Chandamama', 'Parag' etc.

Firstly, I want to put my ideas about the nature and content of the books for children which are printed and published. In my opinion the reading interest lies on the following external and internal factors of the book

1 Size of the book : Generally children like 1/4 Crown or 1/4 demy with attractive cover page.
2 Illustration · Books which have more illustrations are liked by the children. They like pictures of birds and animals in colour. Bigger size pictures or photographs are liked most They do not show interest in smaller illustrations. The children of age-group 6-9 are very fond of pictures. They do not read much. They may see the pictures and its captions if any. Illustrations play an important role in children's literature The book without illustrations will not attract children and they do not have any interest in it
3. Printing types . The printing type, used in the book also counts the interest. Children may read with

interest when type is not less than 16 point.

4. The thickness and the colour of the paper also contribute to interest. White paper and thicker quality may gain popularity.

   Besides, attractive cover pages with attractive pictures will count a lot in getting better reactions about the book and thereby motivate the child into reading the contents.

5. Language Used : The language used is an important factor in children's literature. Reading interest can be developed only by the style of the language used in the book. The eyespan of the child, and his span of perception will also count in his use of the words. The length of the sentences and the number of letters used in a word are also important in children's literature. Of course, this may vary from language to language. According to a research, as far as in English language goes sentences which contain more than seven words will not maintain the reading interest of the children. But research has not been done in most of the Indian languages. The result of research done in English language may not hold good in the Indian languages For example, between Kannada and English there are lot of differences. In Kannada a word of six letters may be easier to read than a word of four letters because of the structure of the word. The structure of the sentences may also affect the difficulty level.

As a teacher of languages, I have some views about the length of word and sentence and their bearing on the reading ability of the children. The reading ability may differ depending upon the age-group. The child of 6-7 can read sentences of only four or five words without joint components. The child of 7-8 years can read sentences having four or five words with some joint components. Children of 8-9 years can read difficult words containing dissimilar joint components. Children of the age-group 9-14 can read a sentence of five or six words which have not more than 4-5 letters. The word which can be read without any difficulty may be comprehended easily. But at the same time the reading interest may decrease. So the length of the word and the sentence and their structure are very important factors in maintaining or increasing reading interest in children's literature.

(The words used have to be within the easy grasp of the children and should find place in their daily lives. Words beyond the comprehension of the children will not sustain interest. But a writer cannot ignore the introduction of new words. 10 to 25% of the total words may be new and scattered without creating problems of reading and comprehending.)

These are all the outer faces of the literature. The reading interest will not be there unless the subject matter and its presentation is attractive. How the subject matter is to be presented ? This is the main question in children's literature. The size of the book may be a desired one. The book may contain adequate and attractive illustrations, the printing types are alright, with reasonable length of words and sentences. But the literature may not be interesting unless the subject matter is prepared and presented in a desirable way. So presentation of the matter has got its own importance We may examine the examples given below to understand the

importance of techniques of presentation.

The famous Indian bird cuckoo is black in colour. The crow and cuckoo look-like in colour, shape and other externals. But they differ in their voice. The cuckoo has a melodious and sweet voice whereas the crow's voice is ugly and very harsh.

Study the way in which the matter is presented Does the presentation of the matter create any interest about the crow ? Look at the other way of presenting the same matter.

There lived two birds in a forest. They both were black in colour and looked like sisters They lived together and flew together. But once spring peeped into the forest when trees began to smile with lovely flowers. The birds enjoyed the beauty and cried. One of the birds cried 'Kuhoo Kuhoo' and its melodious voice flowed into the forest and all men, women. birds etc. listened with love and affection. But the other bird cried 'ka. ka' and the people threw stones with anger Thus the spring exposed the external similarity and the internal difference between the cuckoo and the crow.

Certainly this type of presentation is more powerful and creates better interest Childern can enjoy this sort of presentation. Here is another example :

"When the Piper began to sound his pipe hundreds of rats gathered around him " How many children read this sort of subject matter with interest ? The same story may be presented in the following manner to create better interest.

"The Piper began to sound his lovely pipe The stream of the sound flowed everywhere. Then the rats—father rat, mother rat, smaller rats, bigger rats all rushed into the street."

We can see hundreds of examples like these and we may conclude that the story type of presentation is effective and interesting. Our Indian literature always followed the story method to educate the public. The 'Panchatantra' is a famous and valuable children's literature in Indian culture and it has got good reading interest and maintained it for thousands of years. There is no doubt that the story method is the only best and surest method of presentation in children's literature to maintain reading interest. The other alternatives in presentation are conversation, dialogue and a small drama. These types of presentation will be more valuable, when the children identify themselves with the role they play.

Lastly, let us consider the subject matter. What type of subject can we select for children to read with interest ? Two decades ago the stories which had their origin in mythology and legends were attracting the attention of the children. But due to the advancement of science, books on science and technology are gaining more popularity among children The interest has shifted to the study of literature pertaining to science Even then the reading interest of the children for fiction, mythic stories, legends etc. has not vanished.

Basing myself on these observations I have made regarding the books children select for reading, I am of the opinion that the children of different age-groups like the following subjects for reading.

Age Group : 6-9

1. Conversation of birds and animals
2. Stories of wonders (they may not be realistic ones)
3. Stories of legends

4 Stories of adventure
5. Stories of soldiers, kings etc.

Age Group 9-14

1. Stories of Pouranic personalities like Ram, Krishna etc.
2. Stories of Historic personalities like Shivaji, Ashoka etc.
3. Stories of adventure—in space, on sea etc.
4. Stories of wonders of science
5. Stories of great souls like Gandhiji, Vivekananda etc.
6. Comics, Tit-Bits etc.
7. One act plays—pouranic, historical, social etc.

It has been observed by many that the children of India prefer comedy to tragedy.

The main question that comes to our mind is about the selection of the subject matter and limitations in its selection. I am of the opinion that the subject matter should be selected cautiously and judiciously without prejudice to any aspect. The key point to be carefully noted is that the reading habit of the children should not clash with the interests of society.

बाल-साहित्य में मूल्यों का स्थान

श्री गंगादत्त शर्मा

बाल-साहित्य में मनोरंजन-तत्त्व प्रधान होता है। मनोरंजन-तत्त्व के कारण बाल-साहित्य में रोचकता आती है, रोचकता के कारण ग्राह्यता आती है और जब रोचकता और ग्राह्यता दोनो विद्यमान है तो उसका अनुकूल प्रभाव पडे बिना नहीं रह सकता। कहने का तात्पर्य यह है कि अनुकूल प्रभाव के लिए बाल-साहित्य में मनोरजन-तत्त्व का समावेश करना ही पडेगा। परन्तु, यदि हम बाल-साहित्य को और अधिक उद्देश्य-परक बनाना चाहें, और यह आवश्यक भी है, तो हमें उसमें बाल-मनोविज्ञान को ध्यान मे रखकर, आयु-वर्ग विशेष के बालको की मानसिक परिपक्वता को दृष्टि में रखकर, और समाज की आशाओं और आकांक्षाओं को भी ध्यान में रखकर आवश्यक जीवनोपयोगी मूल्यों का समावेश अवश्य करना पड़ेगा। इससे एक पंथ दो काज सिद्ध होंगे।

परन्तु प्रश्न यह है कि यदि यह आवश्यक मान लिया जाए कि बाल-साहित्य मे जीवनोपयोगी मूल्यों का भी समावेश करना नितान्त वाँछनीय है तो इसके लिए किन-किन मूल्यो का चयन किया जाए। यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है क्योंकि इस पर विचार करने के अनन्तर ही उचित मूल्यो का चयन सम्भव है। उचित मूल्यो के चयन का एक निकष तो यह है कि बालक की आयु और आयु के अनुसार मानसिक परिपक्वता को ध्यान में रखा जाए। दूसरा निकष यह है कि उचित बालोपयोगी साहित्य में उचित मूल्यो का चयन करते समय सामाजिक और राष्ट्रीय मूल्यों को भी ध्यान मे रखा जाए। तीसरा निकष यह है कि बाल-साहित्य का लेखक इस बिन्दु पर भली-भाँति विचार करे कि उसके मन में क्या अपेक्षाएँ है—वह बालक को क्या बनाना चाहता है ? इसके अतिरिक्त एक निकष यह भी हो सकता है कि लेखक बाल-साहित्य में सम्बन्धित मूल्यो का प्रचार न करे, अपितु अपने कथन में उन स्थितियो का निर्माण करे जिनमें अभीष्ट मूल्य अपने-आप उभरते चलें और बालक निष्कर्ष के रूप में उन्हें ग्रहण कर ले। इस निकष पर बल देने का एक कारण यह है कि 'सदा सच बोलो; झूठ मत बोलो; चोरी मत करो; किसी को सताओ मत' आदि उपदेशात्मक वाक्य अपना अर्थ और महत्त्व खो चुके है। हम रात-दिन बड़े लोगो से, नेताओं से, समाज सुधारकों से, धर्म-उपदेशकों से और अपने बड़े-बूढ़ो से बार-बार ये उपदेश सुनते रहते हैं। सच तो यह है कि हम इन्हे एक कान से सुनते हैं और दूसरे कान से निकाल देते है, क्योंकि प्राय देखा गया है कि स्वय उपदेश देने वाला भी उन बातो पर अमल नही करता और इस प्रकार वह 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' की उक्ति को चरितार्थ करता है।

इसके विपरीत बाल-साहित्य की पुस्तकों में चाहे वह किसी भी विधा में, किसी भी शैली मे लिखी गई हो, यदि लेखक ऐसी परिचित-अपरिचित परिस्थितियों का, अनुभवो का निर्माण करे जिन्हे पढकर बालक उन घटनाओ, चरित्रो के विषय मे सोचे, उनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करे और उन पर निष्कर्ष के रूप में अपना स्वय का मतव्य निर्मित करे तो यह बात कहीं अधिक श्रेयस्कर है।

इनके अतिरिक्त और भी निकष हो सकते हैं जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। अब इनके आधार पर हमे यह निर्णय करना है कि हम बालोपयोगी साहित्य के लिए किन-किन मूल्यो का चयन करें। आइए इस प्रश्न का उत्तर खोजने के लिए अपने से एक प्रश्न करे कि हम बालक से क्या अपेक्षा करते है, उसे हम क्या बनाना चाहते है ? सच तो यह है कि हम चाहे कैसे भी रहे हों, हम अपनी भावी पीढ़ी को सब प्रकार से योग्य देखना चाहते हैं। हम चाहते है कि हमारी भावी पीढी बुद्धि की दृष्टि से, अर्थ की दृष्टि से, शारीरिक बल की दृष्टि से और सगठन की भावना की दृष्टि से बलशाली हो। हम चाहते हैं कि हमारे नौजवान किशोर-किशोरियाँ सच्चरित्र हो, वह सर्वभूतहित-भावना और सर्वजन भावना को समझे, अपने क्षुद्र स्वार्थों का त्याग करके समाज और देश के स्वार्थों का ध्यान रखे, उद्यमी हो, अपनी मेहनत की कमाई खाए, परपिण्डोपजीवी न हो, वे प्रसन्नचित्त हो, आशावान हों, दृढ़ निश्चयी हो, सकल्पवान हो। हम चाहते है कि हमारे बालक जाति-पाँति, ऊँच-नीच के भेदभाव से ऊँचे उठकर सबको बराबर समझे, सभी धर्मो के प्रति उनका सम्भाव हो। वे देश-भक्त हो। इनके अतिरिक्त हम और भी बहुत सी बातो की अपने बालको से अपेक्षा करते है। सच पूछा जाए तो बाल-साहित्य के लिए एक केन्द्रीय मूल्य तो बहुत आवश्यक है, वह है परिश्रम की भावना। परिश्रमी व्यक्ति सदा स्वस्थ रहेगा, परिश्रमी व्यक्ति सदा प्रसन्नचित्त रहेगा, परिश्रमी व्यक्ति अपना भी भला कर सकता है, और समाज का भी हित साध सकता है। जो परिश्रमी होगा वह ईमानदार भी होगा। जो परिश्रमी होगा वह स्वावलम्बी भी होगा क्योकि उसे अपनी शक्ति का भरोसा है। वह किसी भी दशा मे और किसी भी जगह शान के साथ जीवित रह सकता है। परिश्रमी व्यक्ति मे आत्मविश्वास की मात्रा आलसी व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होगी। उसमे आत्मसम्मान की भावना भी होगी। अतः यदि बाल-साहित्य मे केवल श्रम के सम्मान की भावना को भी समाविष्ट कर लिया जाए तो अन्य सभी मूल्यों की सहज ही उद्भावना हो सकती है। यदि ऐसा बाल-साहित्य लेखक बालक मे पुरुषार्थ की भावना जागृत कर सके, उसे अपने अन्त.निहित शक्ति का परिचय दे सके और उसमे श्रम के प्रति सम्मान जागृत कर सके तो इससे उत्तम बात और भला क्या होगी ?

दुर्भाग्य से हमारे समाज की सरचना में श्रम के प्रति निष्ठा का दिनोदिन ह्रास होता जा रहा है। कुछ तो वैज्ञानिक प्रगति ने इस भावना को चोट पहुँचाई है और कुछ हमारे सड़े-गले विचारो ने। उदाहरण के लिए यदि कोई बालक पढ़ने-लिखने मे मन नही लगाता, किसी सृजनात्मक कार्य में अधिक रुचि प्रदर्शित करता है तो प्रायः अभिभावक उसे यह कहकर कोसते है 'अरे बेवकूफ, पढेगा-लिखेगा नही तो जूती गाँठेगा जूती, या, अनपढ़ रहकर जीवन भर बैल की पूँछ मरोड़ता रहेगा।' इन अभिशापात्मक वाक्यो से साफ जाहिर होता है कि शायद जूती गाँठना या हल चलाना बुरा काम है। यह श्रम के प्रति निष्ठा का अपमान है। इसी धारणा का फल है कि आज सुसम्पन्न किसान का बेटा भी पढ-लिखकर 100-200 रुपल्ली की नौकरी के लिए मारा-मारा फिरता है। इसी धारणा का कुपरिणाम है कि आज पढ़े-लिखे ग्रेजुएट और पोस्ट-ग्रेजुएट बेकार नवयुवक-नवयुवतियो की बाढ़ आ गई है। यदि ये लोग कोई काम कर सकते है तो वह केवल सफेदपोशी का काम कर सकते है, मेहनत का काम उनके बस का नही। सुनते है चीन के राष्ट्र नेता

माओ ने ऐसे पढ़े-लिखे बुद्धिजीवियों के लिए साल में कुछ दिन के लिए खेत और कारखानों में कार्य करना अनिवार्य कर दिया था। देश की वर्तमान परिस्थितियों को देखकर हमे भी यह लगता है कि यदि इस विषय मे माओ का अनुसरण न किया गया तो देश को अधोगति के गर्त मे जाने से स्वय परमात्मा भी नही रोक सकता।

बाल-साहित्य मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रश्रय देने की महती आवश्यकता है। इससे बालक के चिन्तन का विकास होगा और वह तथ्यो और घटनाओं का विश्लेषण करने मे अपने को समर्थ अनुभव करेगा। आज हमारे देश को ऐसी पुरानी परम्पराओ ने जकड रखा है जिनसे छूटना प्रायः असम्भव-सा दिखाई देता है। परम्पराओ के पालन के नाम पर हम बहुत-सी ऐसी बातें करते है जिनको हम स्वय उचित नही मानते। परम्पराओ के पालन के नाम पर हम अनावश्यक धन, समय और शक्ति नष्ट करने पर बाध्य हो रहे है। ये परम्पराएँ हमारे गले मे ढोल की तरह पड़ी हुई है जिसे चाहे न चाहे बजाना ही पडेगा। बाल-साहित्य लेखक अपने-अपने क्षेत्र मे इस तरह की कुरीतियों और गलत परम्पराओ को जानें और उन्हें दूर करने के लिए प्रयत्न करें। यह ठीक है कि परम्पराओ की शृँखलाएँ एक दिन मे नहीं टूट सकती। इसके लिए बहुत समय चाहिए परन्तु यदि इनके प्रति एक जिहाद खडा कर दिया जाए तो एक दिन वह समय भी आ सकता है जबकि ये बेकार की आत्मघाती परम्पराएँ समाप्त हो सकती है। इस दृष्टि से बाल-साहित्य का लेखक एक नए समाज का, एक नए स्वस्थ समाज का, एक नए स्वस्थ एव प्रबुद्ध समाज का निर्माण कर सकता है।

उपनिपदो में समयानुसार उपयोगी एव स्वस्थ मूल्य के विकास पर बल दिया गया है। पुराने मूल्य पुराने पडकर अपना महत्व और अपनी उपयोगिता खो देते हैं तब इनके स्थान पर स्वस्थ एव बालोपयोगी मूल्य उभरा करते है क्योकि वेदो का आदेश है—चरैवेति-चरैवेति-चरैवेति अर्थात चलते रहो, चलना ही जीवन है, रुकना ही मृत्यु है। परन्तु कुछ शाश्वत मूल्य ऐसे है जो सार्वदेशिक है, सार्वजनिक है, सार्वकालिक है। स्वस्थ बाल-साहित्य के लिए एक ऐसी ही कल्पना उपनिपदों मे की गई है—

युवास्यात् साधु, युवाध्यायक',
आशिष्टो, दृढिष्टो, बलिष्ठ.।
तस्येय पृथिवी पूर्ण वित्तस्य सात्।

इसका अर्थ है हमारे युवक सज्जन हों और, सज्जन का अर्थ है वह व्यक्ति जो दूसरो की पीडा को समझे, जो दूसरो को दुःख मे देखकर विचलित हो जाए। हमारे युवक अध्ययनशील हों, नई-नई बातो का अध्ययन करे, उन पर मनन करे, चिन्तन करें और यदि उपयोगी हो तो उन पर अमल करे। हमारे युवक आशावान हो, निराशा उन्हे कभी घेरे नही। वह सदा उत्साही रहे, उनकी प्रवृत्ति सकारात्मक हो नकारात्मक नही। हमारे युवक बलवान हो, शारीरिक दृष्टि से, बौद्धिक दृष्टि से और आर्थिक दृष्टि से। हमारे युवक दृढ सकल्पवान हो उनके हृदय मे नित नए-नए सकल्पो का उदय हो। वे सकल्प ऐसे हो जो समाज की हित साधना करे। यदि ऐसा हो अर्थात हमारे युवक सज्जन हो, अध्ययनशील हो, आशावान हों, तन-मन से स्वस्थ हों, धन सम्पन्न हो और संकल्पवान हो तो यह सारी पृथ्वी मानवता से सम्पन्न हो जाएगी। इसमे कोई सदेह नहीं। बाल-साहित्य के लेखक को उपनिषद्कार के इस वाक्य को ध्यान मे रखकर तत्सम्बन्धी मूल्यो की खोज करनी पडेगी।

जहाँ तक इन मूल्यों के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है हम पहले ही कह चुके है कि उन्हे प्रचारात्मक और उपदेशात्मक भाषा मे प्रस्तुत न किया जाए। लेखक के लिए यह काम कुछ कठिन है क्योंकि उपदेश देना बहुत आसान है। हमारा सुझाव है कि निश्चित मूल्यों के आधार पर पाठ में ऐसे मोड लाए जाएँ कि हमारे मूल्य का महत्त्व अपने आप उभरता चले और बाल-पाठक उसे सहजता के साथ ग्रहण करता चले।

Illustrations in Children's Literature

R. K. CHOPRA

Literature for children is a recent development to keep alive their emotional interest in things which adults call by the terms 'imaginary', 'fantasy', fiction, etc. They have strong urges to believe in what is unbelievable. This is a natural tendency shared by all children.

The traditional forms of story telling are either languishing or already extinct. A popular art known as 'Kathas' which provided moral and aesthetic satisfaction is more or less extinct nowadays. Folk-tales of fantasy and fairy tales which every grandma used to tell the children at bedtime is being lost because of too much emphasis on exam-based textbooks.

There are few evidences of published works for children in the past. The stories of the 'Panchatantra', since they have practical wisdom for the use of adults, cannot be called childrens literature. Of course, the element of surprise in the treatment of themes and the characterisation do appeal to the children. The scant evidence of printed literature for children in India is perhaps due to the reason that publishers found but a meagre clientele among child readers. On the other hand, the children in the West were in a happier position since they had an exclusive literature on themes from social history, adventure, moral and fairy tales etc. from the times printing technology came in vogue in the 18th century. Specimens of this literature were available in India during the post-independence period.

The idea of children's literature is gaining a lot of importance in every country. A study conducted in America to assess the interest of children in their literature revealed that on an average a child read about twelve times more textual material through picture-books and comic-books alone than from his usual school textbooks.

Since the aim of this paper is to focus attention on the role of illustrations in children's literature, it is necessary to highlight some issues regarding illustration. A few studies were undertaken in the NCERT to assess illustrations in textbooks published by different states and individual publishers. The nature of the study conducted was to evaluate various aspects of these illustrations—such as, the number of illustrations, size, their relevance to the text, whether in line block or in colour and the printing technology used and their overall effect, etc. The aim was to know whether these illustrations meet the needs of children, agreed with their past ex-

perience, personal taste, subject need etc. But since a textbook cannot be equated with a work of literature so far as children are concerned the purpose of the illustration also varies to a large extent in both the cases. There is therefore the need for a study to develop criteria for illustrations for children's literature. The emerging information about the appropriateness of illustration suitable to the children's sensibility, perception and understanding would be quite useful for publishers and other entrepreneurs engaged in producing literature for the children.

At present an illustrator, while treating a theme of children's story, works out his scheme on two major considerations. These are (1) to provide through illustration a visual setting with casts and situation for free play of children's imagination and (2) to stimulate their interest with an attractive design of the illustration.

Styles of illustration : The most popular styles in use for illustrating the children literature in the Western countries are the following :

(1) Traditional Approach : This style was in use in the past to present idealised forms for pleasing and delicate effects in the illustrations. The illustration was conceived to show people, the environment and everything in a most sentimental and aesthetic manner in order to enhance the children's joy of the world around.

(2) Realistic Approach : This style was in use till the Second World War. The aim of this style was to present truthful translation of facts through the illustration. This style did not show any distinction between the adult and children's preference for illustration. The illustrator would represent any scene or situation as they existed in reality.

(3) Kinaesthetic approach : This style is the latest in use in the illustrations for the children's literature. This style attempts to draw picture not because children will like it but that it will be close to the one that the children might themselves draw. This style has been the result of various common characteristics found in the art work of children.

Kinds of illustrations : There are essentially three kinds of illustrations used for children's books including literary work intended for them. These are :

1. Linear drawing for giving flat effect corresponding to the flat paper surface. It sparkles against the white paper.
2. Mass drawing for giving solid effect through light and shade. This kind of drawing enriches the imagination for drawing exactness of forms.
3. Colour drawing for giving natural appearance through use of true colour as in the object. The drawing has emotional appeal for the children.

Often, the mass drawing and the colour drawing have failed to produce the desired effect in the illustration. This may be due to bad execution of drawing itself or it has not been printed well.

Although the styles and kinds of illustrations are quite important factors, the publishers of children's literature have to bear in mind the psychology of children as readers. Generally the children's first intention is to search for a nicely printed book, perceive it well and read it if it has appealed to their senses Another tendency among children is that they do not read only a particular theme. (It is an adult habit to develop spheres of interest). Any theme which arouses their interest and curiosity or which gives them suspense and excitement is acceptable to them. How a

publisher has planned a book for them gets a quick response of acceptance or rejection. Probably it is difficult to suggest as to what should be approximate number of illustrations for rendering a theme or the whole book of literature. There is no hard and fast rule Sometimes, a book can be wholly illustrated though it may be intended for grown up children This simply depends on how the theme is required to be treated.

From the available books on literature, it has been generally seen that one single illustrator has executed the illustrations for the whole book, including the cover The aim in assigning the whole work to an individual illustrator is that he would maintain the uniformity among illustrations and would give the feel of the whole story in the pictures. Too many illustrations may disturb the interest of children with variations in styles and design qualities.

In conclusion, children's literature should provide a source of constant thrill to the children for exploring the world of fantasy and the world of reality.

बालक का भावात्मक विकास और बाल साहित्यकार का दायित्व

डा० इन्द्रसैन शर्मा

साहित्य जहाँ एक ओर समाज का प्रतिबिम्ब है वहाँ दूसरी ओर जीवन को (समाज को) एक निश्चित दिशा मे मोडने वाली धारा भी है। आज के बालक को यदि कल के, एक सुव्यवस्थित नागरिक के रूप मे ढालना है तो उसे इच्छित अर्थात् अपने कल के कल्पित समाज के ढाँचे के अनुसार, साहित्य की धारा मे अवगाहन कराना होगा। इसके लिए आवश्यक है कि बाल-साहित्यकार बालक के मनोवैज्ञानिक विकासक्रम से भली-भाँति परिचित हों, उन्हे बच्चो की आदतो, अभिरुचियों का पर्याप्त ज्ञान हो जिससे कि वे इनके परिमार्जन और सुधार एव विकास में समुचित योगदान दे सकें, तभी बालक का इच्छित एव सतुलित शारीरिक तथा बौद्धिक विकास बाल-साहित्य के द्वारा करने मे वे समर्थ हो सकेंगे।

आज बच्चा मिट्टी का लौदा नहीं अपितु वह एक जीवित गतिशील शक्ति है जो स्वत: विकासोन्मुख है और हम उसका मार्गदर्शन करते है, मार्ग प्रशस्त करते है और उसके विकास मे यथोचित सहयोग प्रदान करते है। इस दृष्टि से आज हिन्दी में उपलब्ध बाल-साहित्य कतिपय दोषो से ग्रस्त है जिससे वह वाँछित उद्देश्य की पूर्ति कर पाने में असमर्थ है। उदाहरणार्थ, केवल लेखक का उपदेशक बन जाना और युवा जीवन के सभी अनुभव बालको तक पहुँचाने का असफल प्रयास करना, बालक केवल बालको के विषयो मे ही जानने को जिज्ञासु है, इस भ्रामक धारणा का शिकार होना, बालक केवल मनोरजन चाहता है, ऐसा भ्रम होना, आदि-आदि। इन सब बातो को दृष्टि-पथ में रखते हुए हम बालक के भावात्मक विकास पर दृष्टिपात करेंगे और फिर विचार करेंगे कि बाल-साहित्य बालक के व्यक्तित्व-निर्माण मे तथा उसकी जीवन-शैली को उचित रूप देने मे कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकता है।

बाल्यकाल में भावात्मक विकास

इस काल में बालक दूसरो के ऊपर होने वाली उग्र और अप्रिय भावो की प्रतिक्रिया से अवगत होने लगते हैं। दूसरे शब्दों मे सामाजिक जीवन मे कौन से भाव अपेक्षित हैं और उन्हे किस प्रकार व्यक्त करना चाहिए, इसका ज्ञान उन्हें होने लगता है। तात्पर्य यह है कि समाज में अपेक्षित-अनपेक्षित को दृष्टि मे रखकर ही बालक अपनी अभिव्यक्ति पर नियत्रण करना सीखते है। इस प्रकार इस काल मे सामान्य रूप से बच्चो मे अपने भावों पर नियंत्रण

करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह नियत्रण बहुत कुछ अनुकरण के आधार पर होता है।

भय के भाव की अभिव्यक्ति कम होने लगती है और वे अपने पर्यावरण की वस्तुओं से परिचित होन लगते है। किन्तु एक ओर जहाँ उन्हे अपरिचित का भय नहीं लगता वहाँ दूसरी ओर परिचित वस्तुओ तथा कार्यों से सम्बन्धित परिणामो के विषय मे उन्हे कुछ चिन्ता होने लगती है। उनकी यह चिन्ता अथवा भय, भावी कार्यों अथवा परिणामो से सम्बन्धित होता है। इसके साथ ही इस आयु मे बालको में क्रोध की भावना भी आने लगती है। इस काल मे बालक स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के इच्छुक होते है। किन्तु घर के अन्य व्यक्तियों द्वारा उन्हे मनचाही स्वतन्त्रता नही मिलती है, उनके कार्यो पर रोक लगाई जाती है। उनके कार्यो की वयस्को द्वारा आलोचना की जाती है। परिणामस्वरूप उनमे हताशाएँ जन्म लेती है और उन्ही के फलस्वरूप क्रोध का जन्म होता है।

प्रसन्नता और स्नेह का भाव भी अब पहले की अपेक्षा कुछ अप्रत्यक्ष रूप से प्रकट होने लगता है। इस काल मे बालक की जिज्ञासा मे भी वृद्धि होने लगती है। वह जिस वस्तु को देखता है उसके विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। यो बालक की जिज्ञासा का क्षेत्र बढ़ जाता है क्योकि उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमता मे पर्याप्त वृद्धि हो जाती है और वह अपने पर्यावरण के व्यक्तियों एव वस्तुओ से अधिक सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करता है।

किशोरावस्था में भावात्मक विकास

इस काल में भावात्मक विकास, शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों से प्रभावित होता है। ये परिवर्तन इतनी तीव्र गति से होते है कि किशोर इनके प्रभावों को भली-भाति समझ भी नही पाता। इस काल के आरम्भ मे किशोर मे एकान्त की इच्छा, कार्य में अरुचि, अशाति, अस्थिरता, परिवार और समाज के प्रति विद्रोह की भावना, भावुकता और चिड़चिडेपन की प्रवृत्ति विशेषत: पाई जाती है किन्तु कालान्तर मे इस नकारी दशा मे धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगता है। कुछ समय पश्चात् वह अपने भावी जीवन को आशा और विश्वास के साथ देखना आरम्भ करता है। फिर भी यह सत्य ही है कि किशोर काल भावो के झझावात का काल है। उसके जीवन में भावो के तूफान उठते है और वह उनमे बह जाता है। वह अनेक कटु अनुभवो के फलस्वरुप या तो जीवन के यथार्थ धरातल पर आता है अन्यथा तो उसकी कल्पनाओ की उडान इतनी ऊँची होती है कि वह पृथ्वी और आकाश के कुलाबे मिलाने की बात सोचता है।

समग्र रूप मे हम कह सकते हैं कि बालक भावनामय प्राणी होता है और वह प्रेम-क्रोध, राग-द्वेष, भय-ईर्ष्या आदि भावनात्मक द्वन्द्वों का तीव्र अनुभव करता है। इन भावनाओं के असन्तुलन और तीव्र-वेगता के कारण बालक मे 'अह' का स्वस्थ परिपाक नहीं हो पाता, ज्ञान के सचय मे बाधा पडती है और उसके व्यवहार मे कौशल का अभाव रहता है। परिणामस्वरुप भावी जीवन मे वह बालक निराश, निरुत्साह, उग्र अथवा अकर्मण्य, समाज-विरोधी तथा सयमहीन बन जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि बालक के संतुलित, स्वस्थ एव पूर्ण विकास मे बाल-साहित्य कहा तक और कैसे सहायक एव साधक सिद्ध हो सकता है?

भावात्मक विकास और बाल-साहित्य

(1) बालक का भावात्मक विकास संयत एवं सतुलित हो, इसके लिए बाल-साहित्य का सर्वप्रथम कार्य यह है कि वह बालक के सम्मुख उसके जीवन, वातावरण, परिस्थितियो एव समाज और पदार्थों का एक ऐसा रूप उपस्थित करे जो सयत हो, वास्तविक हो, सच्चा एवं सरल हो, जिसमें बालक स्वयं को रख कर अपने को देख, समझ और परख सके। तात्पर्य यह कि बाल-साहित्य जिस आयु के बालकों

के लिए लिखा जाए वह उनके जीवन की सच्ची और वास्तविक झाँकी प्रस्तुत करे जिसमे बालक स्वय को पहचान सके, अपनी समालोचना कर सके। साथ ही इस साहित्य मे ऐसे प्रश्नो और समस्याओ का समाधान भी होना चाहिए जो कि बालकों के मन मे समय-समय पर जन्म लेती है। अर्थात् उनकी भावनाओ, मनोगत भावो, इच्छाओ, कल्पनाओ, उनके द्वारा मन मे उठाए गए प्रश्नो और समस्याओ के समाधान से भी वह पूर्ण हो। ऐसे साहित्य में बालक अपनी प्रतिकृति पाकर न केवल उसे पढने में ही रुचि लेता है अपितु वह अपने को बाहर देखकर, अन्तःस्थ को बहिरस्थ करके, एक भावात्मक तृप्ति के साथ साथ अपने को पहिचानता और परखता भी है, जड़ और जगत से अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः स्पष्ट है कि ऐसे साहित्य मे केवल परियो की कहानियो अथवा कल्पनालोक की ऊँची और अतिरंजित उडानो से ही वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति न होगी। वहाँ वैचित्र्य हो किन्तु वह सीमाओ मे बधकर चले, कूल और बाँध तोडता हुआ नही। बाल-साहित्य बालक मे 'अहं' का उदय और विकास करे, उसे दबाए नहीं क्योकि 'अहं' का स्वस्थ एव सतुलित विकास सुखी जीवन के लिए अत्यावश्यक है और उसका दमन जीवन-नाशक।

(2) बालक सहज रूप से जिज्ञासु होता है। वह नई-नई वस्तुओ को अपने चारो ओर देखता है और उनके विषय मे जानने एवं समझने का प्रयास करता है। यो अपने चारो ओर के वातावरण और परिस्थितियो से वह अनेक प्रश्नो से घिर जाता है, उसका मस्तिष्क इन प्रश्नो का उत्तर पाने के लिये बोझिल हो उठता है, और सही उत्तर खोजने के लिए वह छटपटाता है। बालक की यह समस्या या जिज्ञासा दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक नही होती। दर्शन शास्त्र अथवा विज्ञान के चक्रव्यूह मे वह नहीं फँसता। उसके मन मे तो ऐसे प्रश्न होते है जिनसे वह अपने वातावरण, स्थान, मूल्य, उद्गम, महत्व और बाह्य जगत से अपने सम्बन्धो तथा उसमें अपने स्थान को जानना चाहता है। इस दिशा मे बाल-साहित्य का कार्य यह है कि वह बालक की क्षमता, आकाक्षाओं एव सीमाओ को ध्यान मे रखकर उसके अन्तर्गत कोई विशेष उथल-पुथल किए बिना, बडे सीधे-सरल ढग से उसके इन प्रश्नो का उत्तर दे, उसे सतुष्ट करे। यदि इन प्रश्नो का उचित उत्तर बालक को न मिले तो वह भावनात्मक द्वन्द्व के चक्कर में ही फसा रहेगा। अतः इस द्वन्द्व के अधकार मे बाल-साहित्य प्रकाश-पुंज का कार्य करेगा, बालक के प्रश्नो का उत्तर देकर उसकी जिज्ञासा को शात करेगा, उसे बोध प्रदान कर उसका मार्ग-दर्शन और मार्ग-प्रशस्त करेगा।

(3) बालक जो पढ़ता है उसे केवल बुद्धि के द्वारा ही समझने का प्रयास नही करता, अपितु वह उसे अपने शरीर के जीवित तन्तुओ मे अनुभव करता है। भय, क्रोध, प्रेम, करुणा, द्वेष आदि की कहानियों के पढ़ने से उसके हृदय एव रुधिर-तन्तुओं मे परिवर्तन होते है। फलस्वरूप बालक अपने अनुभवों को शब्दो मे प्रकट करना चाहता है। अतः आवश्यक है कि बाल-साहित्य ऐसा हो जिसे कि बालक अपने शब्दों मे अभिव्यक्त कर सके और अपने शरीर के अगो से भी प्रकट कर सके। बालक की भावनाओ के लिए अभिव्यक्ति आवश्यक है। यदि बाल-साहित्य शब्द और क्रिया मे अभिव्यक्त होने के योग्य नही तो उससे बालक को भावनात्मक शाति प्राप्त नही हो सकती, उसे तो अभिव्यक्ति का द्वार चाहिए ही।

(4) बालक मे उपदेश अथवा भाषण सुनने की इच्छा नही होती। अतः बालक पर नैतिक नियमो और धार्मिक विश्वासो को उसकी परिपक्वता से पूर्व थोपना या लादना उसके मानसिक सतुलन के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। उसे जो भी ज्ञान दिया जाए वह रुचिकर घटनाओ के माध्यम से सीधी सरल एव प्रभावोत्पादक भाषा में ही दिया जाना चाहिए। 'यह करो, यह न करो' या 'ऐसा करना पुण्य है, वैसा करना पाप है' अथवा 'यह करना

चाहिए वह न करना चाहिए' आदि बातें बालको के जीवन मे नैतिक तनाव उत्पन्न कर देती है। पाप और अपराध की नकारात्मक जड धारणाएँ बालक के मन में इस समय यो ही प्रबल होती है। उन्हें उत्तेजित करने से मानसिक तनाव में वृद्धि ही होगी। परिणामस्वरूप आगे चलकर बालक अनुशासनहीन, चिन्तामुक्त, निरुत्साहित, नीरस और आत्मग्लानि जैसी भावनाओ का शिकार हो जाता है। अतः उपदेशात्मक या नैतिक साहित्य जैसी चीज को बच्चों के हाथ में बड़ी ही सावधानी के साथ सुअवसर पर ही दिया जाना चाहिए। सत्य तो यह है कि बालको मे नैतिक मूल्यों के बीजारोपण मे प्रत्यक्ष रूप से उपदेशात्मक साहित्य की अपेक्षा वे रचनाएँ अधिक उपयोगी हो सकती है जो परोक्ष किन्तु मनोरंजक रूप में उक्त मूल्यो का संस्कार बालको के मन मे बनाये।

(5) बालक मे रूप अर्थात् सौदर्य की भावना को उत्पन्न और पोषित करना भी बाल-साहित्य का दायित्व है। बालक मे असीम जिज्ञासा, अनवरुद्ध भावना और जीवन की चेतना अपरिच्छिन्न होती है। सौदर्य के सयत और संतुलित व्यवहार से साहित्य भावना, जिज्ञासा और जीवन-चेतना को सही दिशा देकर व्यक्तित्व का रूप प्रदान कर सकता है। अतः साहित्य मे सत्य और सौदर्य का पोषण होना चाहिए। किन्तु उपदेशात्मक शैली मे नहीं। हाँ, शब्दो मे ऐसी लय, तुक, साम्य, ध्वनि, सरलता, वाक्य-योजना आदि ऐसे हो कि वे ध्वनि-संगीत के सामजस्य से जीवन जैसे तरल और सजीव हो उठे। ऐसे वर्णनो को बालक न केवल पढने मे ही रुचि लेगा अपितु वह सौदर्य का आस्वादन भी कर सकेगा।

(6) बालक का अबोध मन और अपरिपक्व तन प्रौढ मन से सर्वथा भिन्न होता है। अत: बाल-साहित्य मे भय, उद्वग, क्रोध आदि भावनाओ का उग्र प्रदर्शन नही होना चाहिए। प्रौढ मन जहाँ एक ओर इन भावनाओं के प्रति परिपक्व होता है और उस पर इनके प्रदर्शन का कोई विशेष परिणाम नहीं होता, वहाँ दूसरी ओर बालमन पर इनके कई दुष्परिणाम होते देखे गए हैं। ऐसी घटनाओ के वर्णन से बालक का मन भयभीत और चिन्ताग्रस्त हो उठता है जिसका प्रभाव जीवन पर्यन्त रहता है। जड़ और जगत के प्रति उसकी धारणाये अस्वस्थ और असतुलित बन जाती है। साथ ही बालक के शरीर में सिहरन पैदा करने वाली मृत्यु जैसी घटनाएँ अथवा माता-पिता से बिछुडने वाली भयभीत करने वाली घटनाओ का प्रदर्शन भी नहीं होना चाहिए। माता-पिता बालक के लिए जीवन एव सुरक्षा के साधन है। उनसे बिछुडने की कल्पना अथवा उनसे दण्ड और ताडना की घटनाएँ बालक के कोमल मन को भयभीत बना देती है। अतः इस प्रकार की घटनाओ का खुला प्रदर्शन बाल-साहित्य के लिए न केवल अनुपयोगी होगा अपितु हानिकर और अस्वस्थ भी।

(7) बाल-साहित्य के नाम पर कुछ भी लिखने से पूर्व लेखक को इस बात पर विचार कर लेना चाहिए कि वह किस आयुवर्ग के बालको के लिए लिखने जा रहा है? उस आयु के बालकों की आवश्यकताओ तथा पठन-रुचियो और भावनाओ का वह अध्ययन करे और उस वर्ग के बालको के लिए उपयुक्त सामान्य भाषा-स्तर का भी यदि वह ध्यान रख कर चले, तो उसकी रचना की सफलता असदिग्ध है।

तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी बालको के लिए लिखा जाए वह प्रभावशाली और स्वीकार्य हो। बालक उसे सहज ढंग से ही अपने व्यावहारिक जीवन मे उतारने को उत्सुक हो। उससे जहाँ एक ओर उनके जीवन की गुत्थियाँ सुलझे वहाँ दूसरी ओर उनके चरित्र निर्माण में भी वह सहायक सिद्ध हो। उदाहरणार्थ, साहस से भरे विषय कायरता के विषयों से अधिक स्वीकार्य होंगे। बुद्धिमानी, ईमानदारी, सद्भावपूर्ण निष्कपटता, सारल्य आदि विषयो से गुम्फित भाव और भाषा बालको को शीघ्र

सम्मोहित कर सकेगी और ऐसे ही विषय चरित्र-निर्माणकारी भी होंगे। लेकिन विशेष ध्यान रखने योग्य बात यह है कि इन सभी विषयों को यदि हम सही में बालकों के गले उतारना चाहते है तो हमें उनकी रुचि, मानसिक विकास और भाषा-स्तर का ध्यान रखकर चलना होगा।

साथ ही यदि लेखक रगों और ध्वनियो के प्रति संवेदनशील होगा तो बालक के लिए रोचक और सजीव चित्र भी प्रस्तुत कर सकेगा। बालक को रग बड़े ही प्रिय होते है। परियाँ, प्रकृति आदि के माध्यम से कल्पना और सत्य पर आधारित विभिन्न रगों का उपयोग कर बालक में कल्पना जागृत की जा सकती है, जो जीवन के समुचित विकास के लिए अत्यावश्यक है। बाल-साहित्य मे चित्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। चित्र विषय के अनुकूल होने के साथ-साथ समान आकार, पर्याप्त और आकर्षक एवं नेत्र-रंजक हो तो बाल-मन अनायास ही मुग्ध हो उठता है।

संक्षेप मे कहना होगा कि जो भी साहित्य बाल-साहित्य के नाम पर लिखा जाए वह जीवन को संयत, समृद्ध, स्वस्थ और संतुलित बनाने वाला हो, केवल कपोल-कल्पनाओं और अतिरजित वैचित्र्य से भरपूर मनोरजनकारी ही नही। वह बालकों में उत्साह, आत्मविश्वास, सुरक्षा, आत्मसम्मान और अनुशासन की भावना जागृत एव विकसित करे जिससे उनका भावी जीवन प्रफुल्लित एवं प्रशस्त हो। इसकी पूर्ति हेतु बाल-साहित्य के लेखकों को जिस मनोविज्ञान के ज्ञान की आवश्यकता है वह पुस्तकों से उपलब्ध नही हो सकता। इसके लिए तो लेखक को स्वय बाल मनोभूमि पर उतरना होगा और तब पुस्तकों का आधार छोडकर घर की प्रयोगशाला का सम्बल लेना होगा। बालक के भावों को साहित्य मे वर्णित 10 रसों की सीमा मे नही बाँधा जा सकता है। अत: बालकों के लिए लिखते समय पुस्तकों को कम, हृदय से अनायास और स्वाभाविक रूप से निकलने वाले उद्‌गारों को अधिक महत्व देना चाहिए। ऐसे उद्‌गार बालकों की (घर की) प्रयोगशाला मे तन्मय होकर काम करने के प्रभाव के परिणामस्वरुप स्वत: उद्‌वेलित हो उठेंगे।

बाल–साहित्य का प्रकाशन-बालरुचियों के संदर्भ में

जयप्रकाश भारती

भारत को बच्चों का देश कहा जा सकता है। हमारे देश की कुल जनसख्या मे 42% ऐसे है जो 15 वर्ष से कम उम्र के हैं। यदि सभी बच्चो की सख्या का अनुमान लगाया जाए तो 28 करोड से कम नही बैठेगी। दुनिया मे अनेक ऐसे देश है जिनकी कुल आबादी भी इतनी नहीं है।

इन बच्चो के दु:ख-दर्द को सुनने समझने, घर और घर के बाहर इन बच्चो को होने वाली असुविधाओं, दर्दों और कष्टों को दूर करने की बडो को फुर्सत नहीं है। ये बच्चे सगठित न होने के कारण अन्याय करने के विरोध में और अपनी माँगे पूर्ण करवाने के लिए सामूहिक प्रदर्शन मे असमर्थ हैं और इसीलिए इनकी घोर उपेक्षा होती है। आश्चर्य होता है यह देखकर कि पहली पंचवर्षीय योजना में बाल-कल्याण के लिए कोई राशि नहीं रखी गई थी। दूसरी और तीसरी पचवर्षीय योजनाओं में भी इस पर व्यय की जाने वाली राशि नगण्य थी। चौथी पंचवर्षीय योजना में इस राशि में उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। किन्तु समस्या की विशालता को देखते हुए यह राशि अपर्याप्त है।

कोई दो दशक पूर्व तक यह माना जाता था कि नन्हे-मुन्ने को माँ का दुलार मिलता रहे तो उसके लिए एक निर्धारित कार्यक्रम पूरा करते रहना ही काफी है, जैसे निश्चित समय पर सुलाना, दुग्ध-पान कराना, नहलाना-धुलाना आदि। उसके बौद्धिक विकास के प्रति विशेष ध्यान देने की आवश्यकता ही नही समझी जाती थी। शिकागो विश्वविद्यालय के डा० बैंजामिन एम० ब्लूम की पुस्तक 'स्टेबिलिटी एंड चेंज इन ह्यूमन करेक्टर' (1964) प्रकाशित हुई तो उन्होंने बताया कि चार साल की उम्र तक के बच्चे की पचास प्रतिशत बुद्धि निर्धारित हो चुकती है। इसके बाद बच्चे का मानसिक विकास होने की संभावना क्षीण होती चली जाती है। इन्ही दिनों यह भी अनुभव किया गया कि शिशु के लिए माँ का दुलार ही पर्याप्त नही है। मनोवैज्ञानिक यह कहने लगे कि माता-पिता बालक की शारीरिक माँगो का तो बहुत ध्यान रखते है किन्तु उसकी मानसिक माँगो का ध्यान नहीं रखते। बच्चा विद्यालयो में भली प्रकार शिक्षा प्राप्त कर सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में प्रवेश से काफी पहले उसकी मानसिक तैयारी कराई जाए।

शिशु पुस्तकें : खिलौने पुस्तकें

हमारे यहाँ ऐसी शिशु- पुस्तके तैयार नही हो सकीं जो रंग-बिरगी हो, जिनमे केवल चित्र ही चित्र हो, और पशु-पक्षी, पेड-पौधे, फूल या आसपास की ऐसी ही वस्तुओ से उनका सबंध जुड़ सके तथा अभिभावक की सहायता से बच्चे उनका आनन्द ले

सकें। ऐसी पुस्तकें भी देखने में नहीं आतीं जिनमें कथा-चित्र या दृश्य हों, माँ, बडी बहिन या संरक्षक मे से कोई— उन चित्रों को दिखाकर कहानी सुना सके या फिर लोरी गा सके, अथवा तुकबन्दी जोडकर बच्चे का मन बहला सके। खिलौना-पुस्तकों या बहुआयामी पुस्तकों की बात तो हिन्दी में सोचना ही असभव जैसा है।

हिन्दी का प्रकाशक ऐसी शिशु-पुस्तकें तैयार करने अथवा करवाने की स्थिति मे नहीं है। उनके चित्रण-मुद्रण पर होने वाले भारी खर्च को भी शायद वह उठाना नहीं चाहता। हा, यदि कोई संपन्न-सस्थान इस दिशा मे पहल कर दे तो नकल करने वाले आगे आने लगेंगे।

लेकिन यहीं पर प्रश्न उठता है कि हमारे लेखक भी शिशुओं के लिए कहा रचनाएं लिखते है? शिशु-गीत अवश्य लिखे गए हैं, किन्तु अन्य विधाओं मे काम प्रायः नहीं हुआ है। जो शिशु-गीत लिखे गए है, उनमे भी अच्छे और सच्चे शिशु-गीत कम ही है।

'क' से कठपुतली

स्कूल मे शिक्षा का आरम्भ बारहखड़ी से होता है। स्कूल मे बच्चे को 'क' से कमल या कबूतर पढ़ाया जाता है। किन्तु हमारे समाज में अभिभावक या माता-पिता के आचार-व्यवहार को देखते हुए 'क' से कठपुतली पढाना ज्यादा सही लगेगा। माता-पिता हो या शिक्षक—सभी बच्चे मे ठूँस-ठूँस कर अच्छे गुण भरना चाहते है। वे उसे डरा-धमका कर, ठोक-पीटकर अपनी आकाक्षाओं की कटपुतली देखने को उत्सुक रहते है। बच्चा हमारी जैसी आदतो वाला बने, उसकी रुचि-अरुचि हम से मेल खाती हो। हर क्षण, हर दिन उस पर हम अपने विचार अपनी मान्यताएँ लादते रहना चाहते है। माता-पिता बच्चों में अपनी छवि उतारने को उत्सुक रहते हैं तो शिक्षक उसे गढ़-गढ कर आदर्श पुरुष बना देना चाहते है।

शिक्षा के क्षेत्र में कंठस्थ कराने, व्याकरण घुटवाने, मोटी कलम से लिखवाने, तथा ऐसी ही अन्य बातों पर कितना जोर रहा करता था। हमारी पीढी के बच्चे स्कूल मे कॉपते-कॉपते घुसते थे और छुट्टी होने पर राहत की सॉस छोडते बाहर आते थे। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध मे जीवन-मूल्य बदले, विज्ञान और तकनीकी प्रगति ने मानव-समाज को पूरी तरह झकझोर डाला। अभी तक स्कूलो मे पढाए जाने वाले सामाजिक और साहित्यिक विषयों की प्रधानता के विरुद्ध आन्दोलन छिडा। इस आदोलन का नेतृत्व किया हरबर्ट स्पेंसर और थामस हक्सले ने।

डा० स्पोक की सबसे बडी देन यह है कि उन्होंने बच्चों के प्रति उदार दृष्टि अपनाने पर बल दिया है। उन्होंने कहा कि बच्चे ऐसे वातावरण मे पलने चाहिए जिससे वे माता-पिता के सामने सहमे-सहमे और डरे-डरे न रहे, बल्कि उनसे प्यार करना सीखे।

सुधारक या उपदेशक

नगर और महानगर आज फैलते जा रहे है। गांव उजडते जा रहे है। संयुक्त परिवार टूट रहे है। इसके साथ ही बच्चे की समस्याएँ बढ़ रही हैं। उस पर तरह-तरह के तनाव बढ़ रहे है। बडे-बूढे, नानी, दादी या ताई का प्यार बच्चों को नहीं मिल पाता। पति काम पर जाता है और पत्नी भी या तो काम पर जाती है अथवा उसे घर के बाहर की अनेक जिम्मेदारियाँ निभानी होती है। इस तरह पति-पत्नी दोनों के पास समय का अभाव रहता है। 'मियाँ-बीबी-बच्चे' के परिवार मे बच्चा अकेला पड जाता है। शहरों के छोटे-छोटे घरो मे बच्चे के खेलने-कूदने का स्थान भी नहीं होता। ऐसी स्थिति में घर के किसी कोने में बैठ कर बच्चा किसी पुस्तक या पत्रिका के सहारे ही मनोरजन करना चाहता है। गरीबी के कारण और साधनों की कमी के कारण देहातो तथा कस्बो मे भी बच्चे के मनोरजन के लिए कोई अवसर नहीं होते।

पिता काम से लौटता है तो कई बार गुस्सा बच्चे पर ही उतारता है। छोटे परिवार के कारण बच्चे को कही सरक्षण नही मिलता। उसे तनाव से मुक्ति पाने के लिए किसी पुस्तक का सहारा खोजना पडता है। इसीलिए बच्चो के मनोरजक-साहित्य की आवश्यकता तेजी से उभर कर आई है। किन्तु कठिनाई यह है कि बाल-साहित्य की चर्चा जहाँ भी होती है, हमारा सुधारक या उपदेशक आडे आकर खड़ा हो जाता है। बडो के साहित्य मे हमारा मापदण्ड वैसा नहीं होता।

जो पुस्तके बच्चों का ज्ञान बढाएँ, उन्हें शिक्षा दें—स्कूल के पाठ्यक्रम में ऐसी ही पुस्तके होती है। आयु और कक्षाओं की सीमाओ मे बाँधकर शिक्षाशास्त्री उन पर अपनी मुहर लगाया करते है। अधिकतर ऐसी पुस्तके भी कुछ ही वर्षों में निरर्थक और सारहीन प्रतीत होने लगती है। कई बार पुस्तकें एक या दो वर्ष मे ही पाठ्यक्रम से निकाल दी जाती है—क्योंकि चयन और निर्माण के पीछे सही मापदंड नहीं होते; बल्कि स्वार्थ या अन्य ऐसे तत्व होते है। यदि बाल विकास के मूलभूत तत्व पाठ्यपुस्तकों से जोडे जाते तो किसी राजनीतिक दल विशेष का शासन बदलने से रातो-रात पाठ्यक्रम तथा पुस्तको में परिवर्तन की जरूरत क्यो पडती ?

इसके अतिरिक्त भी इस शैक्षणिक बाल-साहित्य के सबध मे बहुत सी बाते कही जा सकती हैं, किन्तु यहाँ सब कुछ नही कहा जा सकता। इतना तो फिर भी कहना ही होगा कि जिस तरह पश्चिम की खिडकी हम हर समय खोले रहते है, साहित्य से सबधित पाठ्यपुस्तको के बारे में भी हमारे शिक्षाविद् हमेशा विदेशी प्रेरणा तथा विचारधारा के पिछलग्गू रहे हैं।

स्कूली संस्था टूटेगी

प्राचीन काल में विद्यालय मे उपस्थिति के बिना शिक्षा नही दी जाती थी। पत्र-व्यवहार से शिक्षा का चलन नही था। आज हर क्षेत्र मे हमारा दृष्टिकोण बडी तेजी से बदल रहा है। मेरा विश्वास है कि इसी सदी के अन्त तक स्कूल की वर्तमान प्रचलित पद्धति भी निरर्थक सिद्ध हो जाएगी। साथ ही तकनीकी प्रगति के फलस्वरूप उसकी आवश्यकता बहुत कम रह जाएगी। घर मे बैठकर या किसी विशेष केन्द्र में जाकर जो जब चाहेगा, ज्ञान प्राप्त करेगा—मनचाहा ज्ञान, न कि घरौंदो में बटा और थोपा हुआ ज्ञान। उस समय तक टेलीविजन, रेडियो तथा फिल्म के साधन इस तरह विकसित होंगे कि शैक्षणिक पाठ्यपुस्तकें अपना महत्व खो देगी। वह युग बच्चों की सच्ची स्वतन्त्रता का होगा।

बाल-साहित्य की चर्चा करते समय हम शिक्षाप्रद और ज्ञानदायी साहित्य को छोड़ ही दे तो ठीक रहेगा। जिस पुस्तक को देख-पढकर बालक के मन मे ललक पैदा हो, क्या वही पुस्तक उसके लिए ठीक नही है ? पाठ्यपुस्तक के साहित्य से इधर जो लिखा जाता है या छपता है, यदि उसे भी हम घेरों मे बाँधते रहेगे तो उसके पाठक भी सीमित होंगे। भूख में गूलर भी पकवान हो जाते है, हमारे यहा उन्मुक्त उडान का साहित्य न होगा तो वे महापुरुषो की जीवनियाँ ही पढ़ेंगे। परिणाम यह होगा कि लोकतत्र का डका पिटता रहेगा और व्यक्ति की पूजा होती रहेगी। नए-नए भगवान, नए-नए देवता और नए-नए बुत हम खड़े करते जाएँगे और जो चाहेगा, उन्हे बदरंग करेगा, उन मूर्तियों पर कालिख पोत देगा। मूल्य-हीनता में या मूल्यनिरपेक्षता मे ऐसा होना स्वाभाविक ही है।

आजादी के तीस वर्षों में जो पीढ़ियाँ युवा हो गई, उनमें भी मौलिक चिन्तन क्यो नहीं उभरा ? हमारे बाल-साहित्यकारों ने बच्चों को क्या दिया या बाल-साहित्य के प्रकाशकों ने कौन-सा तीर मारा ?

कल्पना-जगत—परी कथाएं

मैं बार-बार कहना चाहता हूँ कि जिस बाल-साहित्य की चर्चा हम यहां करने को एकत्र हुए हैं,

वह मनोरंजक-साहित्य है अर्थात उसके साथ पहली शर्त मनोरजन की है। हो सकता है कही उसका स्वरूप मीठी गोलियो जैसा हो। हम यथार्थ मे जीते है, यथार्थ के कष्ट सहने योग्य बनाने के लिए कल्पना का सहारा लेते हैं—किन्तु बालक कल्पना मे ही जीता है। उसके निकट सत्य और असत्य मे कोई अन्तर नही है, कल्पना और यथार्थ में कोई अन्तर नहीं है। उसे जो साहित्य दिया जाय, वह ऐसा हो जो उसका रागात्मक सबध, सृष्टि के साथ, पृथ्वी के साथ, प्रकृति के साथ, पशु-पक्षियों के साथ, नक्षत्रो के साथ और फूलों के साथ जोड सके ताकि बालक एक बौद्धिक अवकाश पा सके, जीवन का आलोक पा सके क्योकि प्रत्येक काव्य यही करता है, कवि भी यही करता है। बडे से बडा कवि स्वयं बालक के अतिरिक्त कुछ भी नही होता। यदि वह यथार्थ की बात करने लगे, कहने लगे तो फिर वह आपकी कल्पना को कुंठित ही कर देगा। आपकी रागात्मक वृत्तियो को बाध ही देगा।

सामान्य साहित्य का लक्ष्य हम यही मानते हैं कि वह हमारी अनुभूतियो को समृद्ध करता है, हमारी रागात्मक वृत्तियो को नए आयाम देता है, उनका परिष्कार भी करता है तो बाल-साहित्य को इससे कई गुना अधिक यही करना चाहिए। इसीलिए बच्चो के बीच परी-कथाएँ बडी लोकप्रिय रही हैं। ससार के सभी देशो में, सभी युगो में परियो की कहानियां पाई जाती रही हैं। पाई जाती रहेगी। 'समथिग शेयर्ड : चिल्ड्रन एण्ड बुक्स' (सपादक-फिलिप्स फेनर) के अनुसार—

'मेरी समझ मे नही आता कि क्या हमे बालक को उसकी पैतृक सम्पत्ति 'परी देश' से बचित करने का अधिकार है? वास्तव मे मेरा विश्वास है कि आज के बालक को ऐसे साहित्य की सबसे अधिक आवश्यकता है क्योकि इस्पात, पत्थर और मशीनो ने उसके मानसिक सतुलन को अव्यवस्थित कर दिया है।'

बाल-साहित्य की रचना सहज नहीं है। फिर भी प्रत्येक क्षेत्र मे और हर भाषा में बाल-साहित्य की रचना की गई है। किन्तु अच्छा बाल-साहित्य उन्ही लोगो ने लिखा है जो अन्त तक बालक जैसा हृदय लिए रहे। गुरुदेव रवीद्रनाथ ठाकुर ने बालको के लिए बहुत कुछ लिखा—इसलिए लिख सके कि वे अन्त तक बालक के से हृदय के रहे। उनकी कल्पना वैसी ही रही, जिज्ञासाएं वैसी ही रही। जिन्हे हम छोटी या तुच्छ वस्तुएँ कहते है, उनमें भी उनकी रस-मयता वैसी ही रही। जिस लेखक मे निरीक्षण के साथ ऐसी रसमयता रहती है कि छुद्र से छुद्र, छोटी से छोटी वस्तु से रस का संचय कर सके, वह श्रेष्ठ साहित्य देता है। जीवन का हर छोर, हर कोण ऐसा है जिसमें हम नवीनता खोज सकते है, नवीनता को खो देना शैशव को विदा कर देना है।

मनोरंजन से विकास

सूरदास के काव्य मे चदामामा उतरा करते थे, थाली मे, पानी में। परन्तु आज का बालक जानता है कि वहाँ आदमी पहुँच चुका है। वातावरण में जो ज्ञान का प्रकाश फैल गया है, बालक उससे अपरिचित नहीं है। इसके साथ ही, वातावरण मे जो निम्न वृत्तिया विकास पा रही हैं, ईर्ष्या, द्वेष और होड की दौड चल रही है—उन्हीं के बीच बालक पल रहा हैं, विकास कर रहा है। यथार्थ के नाम पर हम उसे भी उन्ही में उलझाए नही रह सकते। जिस परिवेश मे बच्चा पलता-बढता है, उससे वह परिचित है। बालक खेलता है, उछल-कूद करता है, वह हर समय कुछ न कुछ करते रहना पसन्द करता है। उसके खेल मे मनोरजन ही मुख्य है, किन्तु इसी खेल के साथ उसके शरीर का विकास भी होता रहता है। स्वस्थ शरीर से मानसिक और बौद्धिक विकास भी जुडा हुआ है। लेकिन हम उसके खेल-कूद पर भी प्रतिबध लगाया करते हैं। उसके क्रिया-कलाप को रचनात्मक दिशा मिले, प्रोत्साहन मिले—हम अभी तक ऐसे साहित्य की रचना नही कर सके है।

प्रकाशन में उन्नति

हिन्दी के बाल साहित्य मे आजादी के बाद

तरह-तरह के प्रयोग हुए हैं। उसके रूप-स्वरूप मे भी हर दृष्टि से निखार आया है। ऐसे उदाहरण है कि बच्चो की पुस्तकों के दस-बारह सस्करण हुए हैं और साठ-सत्तर हजार प्रतिया बिकी हैं, बच्चों की मासिक पत्रिका एक ही भाषा में सवा दो लाख बिकी। यह स्थिति उत्साहवर्धक है। अपने देश मे अंग्रेजी की किसी बाल पत्रिका ने यह सफलता नही पाई।

बाल-साहित्य का मुद्रण आफसेट पर होने लगा है और चौरगी छपाई का रिवाज बढ गया है। मुख पृष्ठ कलात्मक भी हो गए है और आकर्षक भी। पिछले डेढ दशक मे ही प्रकाशको ने हाफटोन के दोतरफा मुखपृष्ठ और पारदर्शियो का उपयोग शुरू किया है। छोटी पूंजी वाले पहले छोटी-छोटी पुस्तकें बाल-साहित्य के नाम पर छापा करते थे। आज साधन सम्पन्न प्रकाशक इस क्षेत्र मे आ रहे हैं और छोटे प्रकाशको का ध्यान भी इस दिशा मे है।

करोडो बच्चे हमारी ओर देख रहे है। उनके लिए फिल्मे अभी कम बनी है। टेलीविजन की पहुँच भी नही हो सकी है। ऐसी स्थिति मे पुस्तक या पत्रिका ही उन तक आसानी से और कम कीमत मे पहुँचती है। इसलिए प्रकाशन की दृष्टि से हम इनमें सुधार लाएँ, यह आवश्यक है।

Children's Literature and Creativity

DR. N. K. JANGIRA

The Context

Creativity in children's literature refers to the author's efforts at the creation stage. The theme he selects; the situations, events and characters he creates; the thought patterns he weaves, and language and style he selects for communication, occupy the focus at this stage The creation stage is followed by the production stage which involves the media and mode of presentation, the illustrations, the layout and the gestalt view of the get up. Once literature is produced, the focus shifts to the consumer—the reader—the child. Is creativity enshrined in the literature produced, perceived by the children who read it ? If not, why ? If yes, what happens to him ? Does it help in the development of creativity in the children ? Can children also create such literature by themselves ? What is the position of the children's literature produced in our country, when it is viewed from two vantage points ? These, and a host of other questions, challenge us as soon as we reflect on children's literature.

Keeping in view the questions posed above, an attempt has been made in this paper to present briefly the development of children's literature in our country with special reference to the creativity aspect, to reflect on its potentiality as a means of developing creativity in children, to present an experiment in helping children to creative writing using nontraditional means, and to raise issues for chartering directions for the development of children's literature from these angles. Creativity being the central theme of the paper, a brief reference has been made to its concept in the beginning itself.

The paper suffers from limitations due to several constraints. It is painful to note that very little has been published on children's literature in our country. Even a simple piece of information like the turnover of children's literature is not available. Regional literature for children remains confined to the area which it serves In the absence of regular reviews, knowledge about the trends in children's literature is scanty. So, whatever opinions about trends in quantity and quality are expressed in the paper, can at best, be considered as impressionistic The opinions are based on the limited exposure of the author to children's literature in English and Hindi as published from time to time. Personal discussions with authors and

producers of children's literature have also coloured these opinions. Secondly, the focus of the paper represents a bias so far as objectives of children's literature are concerned. Development of creativity through children's literature is one of several objectives, like information giving, pleasure giving, ethical by way of modelling reader's behaviour through transmitting selected values, and so on. Creativity as an objective of children's literature has been placed in the focus not to undermine the importance of other objectives, but because, the author feels that this objective has been hitherto neglected. Thirdly, some of the ideas given in the paper have emerged from author's field experiences with children and not through rigorous research based on controlled experiments. The major purpose of the paper is to stimulate thinking so that some directions for future children's literature in the Indian context emerge. It is against this perspective that the paper may be viewed.

II. Creativity and the Creative Process

We do not know, of course, just where you happen to be at this moment, but chances are that you are in a man-made environment, your office, your home, a school room, library, or public vehicle where you have time to read. Glance about and you will see that almost always some person at sometime has been or is, engaged in a creative act, and the sum total of those acts makes up the world you live in. This applies not only to your physical environment, but your mental one as well—your mind is filled almost entirely by symbols originally formed by creative persons.

Consider what these creative products are made from. Very simple things, things that existed in nature, now combined into new patterns. The chair you sit in did not exist in the tree from which the material came, but in the mind of a creative person who conceived of it and designed it. And so with the desk or table, the rug on the floor, the drapery at the windows, the very floor and walls and ceiling that surround you. All are patterns formed by creative persons who found new combination for quite simple things. (Fabun, 1969; pp 3-4)

Creativity has been defined in several ways by different authors. The limited scope of the paper precludes marshalling the various definitions. For details, reference can be made to Anderson (1959), Ghiselin (1963), Myron (1963), Ralph (1966), Parnes (1967), Nacol (1969) and Fabun (1969). Apparently, definitions are numerous, but there is a common thread running through them. The common denominator in all definitions is the product of the creative act which is "Unique", "Original", "New" or "Different" from the one that preceeded it. For our purpose, we may accept the definition of creativity as the process by which original patterns are formed and expressed. This process is basically the same whether the pattern is expressed as an invention, a change in technique, a musical melody, a mathematical or a scientific theory. Every creative person has a store of facts, ideas, concepts, principles and images in his mind. He perceives *new* relationships among them in his *own* ways and creates an *original* pattern. The process is creativity, the unit a creative act and the resultant original product a creative piece.

Fabun (1969) lists steps for successfully completing the creative act. The person

must have a *desire* to create something of his own, something original This desire provides motivation, which is one of the conditions of creativity. The desire to create is followed by *preparation* which involves equipping oneself with information through study, observation, experimentation and experiencing The process is the analytical way of "making the strange familiar". With all the material with him, the creative person begins to work out some new patterns out of his treasury through what is called as *manipulation*. The manipulation is usually through the process of synthesis in a bid "to make the familiar strange". This stage is usually followed by an unpleasant phase known as *incubation* The person is not satisfied with the pattern. He is under psychic tension because of his not being satisfied with the product. Unconsciously, he goes on arranging and rearranging various elements in his pattern Then he suddenly reaches a satisfactory pattern—satisfactory according to his subjective criteria. This happens like a sudden "revalation", "an insight", "a flash", "a sudden dawning". This stage has been described as *illumination*. This is followed by *verification* which involves examination or valuation of the new pattern. All these steps are, by and large, found in every creative act In exceptional cases, some creative acts appear to be purely fortuitous.

Creativity is a composite entity. But for the convenience of understanding, it can be conceived into its components like the steps into which the creative process was analysed earlier The components of creativity are *ideational fluency*, *flexibility*, *uniqueness and elaboration*. Ideational fluency is the ability to generate a steady flow of ideas, possibilities, consequences, and objects This is, however, a necessary component, not sufficient for creativity. Flexibility refers to the ability to use many different approaches or strategies in solving a problem, the willingness to change direction and modify given information. Uniqueness represents the ability to produce clever, unusual and original response. Elaboration is the ability to expand, develop, particularise, and embellish one's ideas, stories and illustrations.

Creativity flourishes in a particular type of climate. The freedom to think and act are the necessary conditions for creativity. Unless divergent ideas are tolerated and valued, it is very difficult to have creative talent There have been instances when creative talent forced its way out even in repressive climate But the incidence of talent will increase with the socio-emotional climate that allows a person to think independently, divergently, in a non-conformist way so as to develop new patterns of thought and action in various spheres of human endeavour.

Against this background of creativity, creative process and the creative act, it will be worthwhile to consider literature. Creative literature can be a more appropriate term. It implies the subjective, unique patterns of thoughts, actions, episodes, events, objects and interactions generated by the authors in various styles and forms using different techniques. Even styles, forms and techniques can be created suitably to the needs of the individual authors. Periphera considerations of literature will indicate that all written expression is creative since no two writings are identical. But a little careful exami-

nation will reveal that lot of literature is far from creative For example, one would find translations of works, imitations of themes, styles, characters, events, and even borrowing of language. The participants, being creative writers themselves, will know as to how much of our literature is suffering from plagiarism, and how much of it is genuinely creative This, however, raises an important issue The elements of creative literature comprise of multidimensional matrix. Numerous permutations and combinations of these elements are used in literature. Out of these combinations only one combination is strikingly different or unique. Shall we consider the whole piece of work as creative or shall we consider only that particular combination creative, because it is original ? If yes, why ? If not, is there a minimum number of unique combinations for classifying a particular piece of work as creative ? The issue is left open for consideration by the reader

Creativity in children's literature will have to be viewed from various angles as outlined earlier in the paper. This is to be kept in view while considering the development of the children's literature in in our country.

III. Children's Literature—Trends

Children's literature, as such, is a recent development in India Its origin can be traced to the informal oral tradition in the form of tales told by parents and grandparents to entertain children and to teach them moral values. These tales were based on stories from the *Panchtanttra*, the legends and the myths. Lullabies also fall in the this category. Formally published children's literature, however, is about a century old. The beginning was made with reproductions or imitations of western countries, particularly, Britain This was followed by indigenous stories from the *Panchtantra*. Stories from the Arabian Nights also found their way into literature Till recently most of our children's literature was imported. This children's literature, however, was a luxury in pre-independence India. In quantitative terms it was inadequate, in economic terms it was inaccessible to common children, in qualitative terms it represented a foreign culture unsuited to the genius and conditions of our children. Children's literature suffered from utter neglect by the government as well as private enterprises. Government had many other needs on its priority list, while private enterprise found it unremunerative due to the very low level of demand.

With the attainment of independence, a massive programme of expansion of elementary education was initiated through national plans in order to fulfil the constitutional obligations regarding universal enrolment of children in the age-group 6-14 years. Whatever be the shortfalls in the enrolment targets, one fact is indisputable that there has been unprecedented expansion of education at the elementary level with corresponding increase at the subsequent levels. This created a demand for children's literature for equipping libraries Even consumption by individuals showed upward trend.

The infrastructure for the development of children's literature was almost non-

existent in the country Publishers had no experience in this line There were no writers who could write for children The majority of artists never thought this to be an area to work on The multinationals priced the literature so high that it was not only out of reach for common homes, even government found itself helpless in procuring it for the schools under its charge. Children's magazines were conspicuous by their absence Some children's literature, however, was produced by the existing publishers not because they were interested in children's need but because they were to supply books to the school libraries. Mostly these were reproductions or imitations. Very little creative effort was discerptible

The work of the Children's Book Trust stands as an exception so far as the development history of children's literature is concerned. Later on the National Book Trust, the Publication Division and the National Council of Educational Research and Training (NCERT) joined the stream These are all government financed bodies. Literature produced by these organisations is commendable They are the pace setters in this area in the country But their marketing failure and plagiarism by the private publishers brought a setback to the movement. There is no use in going into the details of this controversial issue, but no one can deny the contribution of these agencies towards children's literary movement in the country.

Some of the private enterprises exploited this supply, while some of them were inspired to produce good children's literature. Today, there is a good number of publishers who have either taken up production of children's literature exclusively or they have a section for it The result is considerable increase in the quantity of the children's literature being produced in the country in the form of books and magazines. Even daily newspapers, periodicals and magazines have started sections on children's literature It is not possible to quote exact figures showing the growth rate, but the increase is conspicuous The question, however, is whether it is adequate for the needs of the increasing number of the children in the current pipeline of education? Will it be adequate to fulfil the needs of about 10 crores of additional children who will be in schools in a few years ? Probably, some of the readers will take the position that all children do not read other literature apart from that prescribed in their courses of study. But, the schools have libraries and even the number of parents buying children's literature is increasing

The question regarding the quantitative aspect of the children's literature can be posed from another angle as well. Does the present literature contain adequate variety ? Though appearing to be quantitative, the question has quality overtone. If we scan children's literature available in the market, the majority of it will be in the form of tales of one kind or the other. Literature in the area of science and science fiction is very limited. Creative stories and novels for children are scarce. Probably, the reason can be

that we do not have writers who are exclusively devoted to this area. Moreover, we do not have the publishers who can patronise such a genre of writers and allied workers. They are more concerned about money spinning operation than the quality of the work they produce. There is, however, a streak of light in this pessimistic area. Some of the bigger private enterprises have now turned to this areas. India Book House, Thomson Press, Vikas Publications, Rajpal & Sons, Hemkunt Press have entered the areas. National Publishing House and some more publishers are planning to join the club

Viewed from yet another angle, do we have sufficient children's literature for the different age groups ? The answer to me appears to be in the negative. As a matter of fact, much attention is not being paid to the grading of children's literature This is not indicated in the books. The reason again appears to be tactical as well as lack of expertise, tactical in the sense that if age group is marked it cannot be supplied to all institutions. The vagueness about the age group helps the business to sell them to all and any type of institutions Laymen who *purchase* books are forced to believe that a particular book caters to the age needs of the child for whom he is making the purchase The argument looks to be naive, but is a reality The expertise for producing children's literature, particularly at the lower level, is scanty.

Children's literature in quantitative terms in the vernaculars or the regional languages still remains below standard. The maximum books will be available in English, because this is the language of instruction of the affluent sections of society which can afford to purchase books. This may be followed by Hindi, Bangla, and so on But in some of the regional languages children's literature is conspicuous by its absence, the main reasons being limited demand and absence of an enterprise taking interest in the area How this situation is to be remedied is a crucial issue. Decision on the issue is deferred here to be taken up at an appropriate stage.

Coming to the production stage, there has been a marked improvement in illustrations, layout, get up and printing. Excellence is yet to be achieved so as to make it comparable to the production quality of the literature being produced in advanced countries. However, the production quality of the major portion of children's literature is far from satisfaction. Many a time it is even repulsive. The reason being accorded to the low quality of the production of children's literature is the high cost involved and inability of the consumer to pay such a high cost Will then, this state of affair continue ? Will our children continue to be deprived of good literature from the production point of view ? If not, what is the solution to this problem ? To my mind, some innovative approach will have to be adopted to overcome this difficulty. The major cost is on the production of illustrations. particularly, multicoloured offset. In our languages, books are produced in limited quantity. Can we develop illustrations and have the best of production ? The matter can be printed in many languages, thereby, pooling the cost of production on illustrations etc. This undoubtedly, can be done through a cooperative effort. May be, the publishers association can do it. This is a suggestion worth consideration. The idea is being tried

out at least by one publisher who has shown a sense of enterprise

One trend that is very recent in the history of Children's literature is reproduction of literature from advanced countries under either bilateral agreements or through UNESCO The idea in itself is not bad. But our publishers' attention is only on spinning money out of this activity and not in learning to improve his own production so that sometimes our material is also borrowed and printed in other countries Do we have any of our material being produced in foreign countries ? Will we be on the receiving end ? Have our publishers who are taking advantage of such schemes ever thought about it ?

By way of summary, trends in children's literature are towards expansion, but the expansion suffers from imbalances objectivewise, stagewise, languagewise and even content and area wise This imbalance is to be corrected in future. The creativity aspect should receive ample emphasis. The production quality needs to be improved to reach excellence along with reasonable price structure. A generation of specialists in children's literature—author's, artists, editors and publishers needs to be developed for providing quality literature for children—the citizens of tomorrow The business enterprises have to lend special attention to hitherto neglected area. Alongwith ensuring their genuine economic interests, they need show a little more innovative spirit to achieve a breakthrough. The government agencies should not be construed as a threat, but as complementary effort to promote quality in children's literature.

IV Children's Literature and Creativity

This section places the child in the focus the way he is influenced by children's literature and the way his creative ability is influenced Before examining the issue properly, it may be worthwhile to examine anassumption which has a bearing on the subject. According to this assumption, every individual has some measure of creative potential in him. This potential manifests itself in the form of his expression emerging in the process of his interaction with environment. Further, through appropriate training and education, the potential can bloom into creative ability in different measures depending upon, of course, genetic limits. Some people may say that even persons without training and education have shown high level of creativity, they have made history. But, these persons might not have received formal training and education in the sense we mean these days. They have, undoubtedly, undergone rigorous informal training and education through experience. Secondly, systematic training and education for the development of creativity is likely to increase the incidence and level of creative talent in different areas of human endeavour. For detail, one can refer to Instructional Media and Creativity (Taylor, 1966), Renzulli (1973), and a number of papers appearing in various journals on creativity and creative behaviour.

It may also be worthwhile at this juncture to recapitulate the elements of creativity viz, ideational fluency, flexibility, uniqueness and elaboration. If children's literature attempts to help the children in developing the objectives related to the components of creativity, there appears to be strong likelihood of grooming the

creative potential of the children who read it. Some activities corresponding to these elements of creativity have been developed. These activities are reflected in the devising of tests of creativity. Renzulli (1973) designed activities like thinking about things, fun with words, consequences, word formation, alternate uses, figure completion, changing things, sentence completion of skeletone comparisons, story writing, giving captions to figures, designing, completing unfinished stories, etc. If children's literature uses situations where child is required to involve himself in some of the activities connected with elements of creativity, he is likely to improve his creative ability. This can, however, be achieved by the author, the artist illustrating the literature and the designers who themselves are creative. Innovative situations and techniques of presentation is indispensable for accomplishing this objective The child will have to be challenged at every step to think beyond the lines, to analyse and synthesise various situations, episodes, events and characters and to question the author himself. Some of us may question the desirability of this objective of the children's literature, but to my mind, this is the most important Of course, the evidence that children are showing improvement in creative ability will be forthcoming only when opportunity is povided to them to express

It is evident from the preceeding discussion that challenging the children to think creatively through creative children's literature and providing opportunities to them for expression leads to the development of creativity in them. The assessment in this respect refers to the follow up phase of children's literature, since this involves the study of its effectiveness. To my knowledge, no such study has been conducted as yet in our country. The publishers and government organisations involved have some indirect evidence, if it can be called evidence It is available in Children's World, Bal Bharati and some other magazines which publish children's writing. The development of literature for children must have a built-in system for such a follow up. Studies conducted abroad, however, support the view that the study of literature by children leads to improvement in their creativity score.

Shanker's Annual also publishes children's creative work. Three pronged action is called for to provide directions to the development of children's literature in future. Firstly, the creativity objective needs to be placed in the focus. Secondly, innovative techniques be developed and employed for writing and producing children's literature. Thirdly, follow-up studies be conducted to study the effectiveness of these techniques in terms of development of creativity in children. Implied in the third actionpoint is the action for using the findings for improving future literature.

V An Experiment

An experiment in creative writing was conducted by the author in Sikkim. The experiment was based on the following assumptions :

1. *Creative Potential is universal :* Every child with any ability level is capable of creative thinking. That all children can be helped to creative expression, in this case it was creative writing. The assumptions are suppor-

ted by several studies (Tisdall, 1962, Rouse, 1965, Cawley and Chase, 1967).

2. *Creative Potential can be improved through imaginative programmes:* Through systematic training and education exercises the creative potential can be improved, atleast upto a certain limit

3. *Given the opportunity, children exhibit creativity:* Children are creative in the beginning. It is, however, curbed by negative reinforcement as they develop. Given the opportunity, they express their creative talent.

4. *Provided an open climate, children involve in creative acts:* Creativity flourishes in an open atmosphere. Children in open atmosphere feel encouraged to think independently, divergently and create new patterns

On the basis of the assumptions mentioned above, the author launched the present experiment with the so called backward and tribal children of the hills This included exposure of the children to a variety of literature besides textual instruction, discussion forums, display forums and even a publishing forum first as manuscript magazines and then printed ones.

Two major approaches were adopted to stimulate the children to creative writing. Both were nontraditional In the first approach, pictures were shown to them and they were to write stories on them. On the basis of the author's earlier experience with children writing stories, the selection of the stimulus picture was done very carefully The picture had to be semiprojective, neither too vague to completely frustrate the child, nor too clear to fail in challenging him to think. The situation was also semistructured. The children were required to keep the following questions in perspective while writing.

1. What do you think what is happening in the picture ?
2. Why do you think it is happening like this ?
3. What do you think what has happened before ?
4. Why do you think it happened like that ?
5. What do you think what will happen after this ?
6. Why do you think it will happen like this ?

The three basic questions help the children to focus on the picture while the complementary three questions take them beyond the picture. The three sets of questions represent three phases of the story—the beginning, the development, and the end. The children's stories were studied by the author and some more divergent questions were written on the margin to stimulate them to elaborate. Some very creative stories were developed by the children. The stories are under publication (Jangira, in press). Some samples are however, produced for consideration of the readers.

The creative imagination can be observed in mini stories. "Endless Journey" was written on the picture of the Sun chariot cut out from a magazine. The story was written during the news of man reaching the Moon.

> It was evening. The school children were playing in a *bustee.* All of a sudden, they saw a horse cart coming towards them. It stopped besides them. An old man came down from

the horse cart. "Do you want to go for a Moon walk" ? Asked the old man. Most of the children kept quiet, some out of fear, some out of surprise.

"We shall go. Take us for a Moon walk." Pemit and Ugen requested the old man. He pointed out a seat for them in his cart and two of them jumped into it. The old man gave a call to the horses which the children could not understand. And the horses started off clop-clop up the mountain road. Soon it vanished into the sky.

Several years have passed since then The cart is still on the move. "When will the Moon walk be over" ? Pemit and Ugen demand the old man many a times. But the old man never says a word. The horses just trot on clop-clop, and the endless journey is on.

A picture with a landscape produced another story "March to Heaven".

Tshering lived by the side of a lake. Usually, he could be seen gazing at the sky. He wanted to spot Heaven. He succeeded at last "How to reach there" ? Thought he. Meanwhile, he saw a cloud rising from the lake. The clouds visit Heaven daily. The idea flashed through his mind. At once, he ran to the lake and jumped on the back of a cloud. The cloud steadily marched towards its destination—the sky—the Heaven. Tshering looked back cheerfully saying good bye to the mother earth.

Striking imagination is discernible in Sun and The Sunflower comprising only a couple of sentences.

In my garden, there are many flowers.
I heard the Sun talking to a flower.
"Who are you?" Asked the Sun.
"I am your younger brother Sunflower,"
replied the flower.

It will be interesting to examine two stories written in Hindi. The first one is of an uncaptioned cartoon wherein a seated old man was being threatened by two ladies. The cartoon was given to a child of 10 years who was not able to recognise the personalities involved in the cartoon The story "सात कटोरी हलवा" has been written by a child of 10 years. The story is being reproduced in Hindi to preserve the language of the child.

एक लडका था जिसका नाम था रामू। उसका पढने मे मन बिल्कुल नही लगता था। वह हर समय खेलता ही रहता था। स्कूल से घर आता, बस्ता एक ओर डालता और खेलने चला जाता। जब भी उसके माता-पिता उसे पढने के लिए कहते वह यह कहकर टाल देता कि वह इतवार की छुट्टी मे इकट्ठा ही स्कूल का काम कर लेगा। सब घर वाले उसकी इस आदत से परेशान थे।

रामू की दो बहनें थीं। वह रामू को पाठ पढाने के अवसर की तलाश मे रहती थी। अन्त में एक दिन उनको अवसर मिल ही गया।

रामू को हलवा खाने का बडा चाव था। उसने एक दिन अपनी माँ से हलवा बनाने के लिए कहा। उसकी बड़ी बहन ने रामू की यह बात सुन ली। उसने अपनी माँ से रामू के लिए स्वय हलवा बनाने के लिए कहा। माँ ने उसकी बात मान ली। वह अपनी छोटी बहन के पास गई। दोनों मे कुछ खुसर-पुसर हुई और एकदम दोनो रसोई मे चली गई।

दोनों बहनों ने हलवा बनाया और रामू को रसोई म ही खाने के लिए बुला लिया। रामू नीचे ही आलती-पालथी मार कर बैठ गया। बडी बहन ने एक थाली में सात कटोरी हलवा रख कर रामू

को खाने के लिए कहा। रामू बहुत खुश हुआ कि उसे बहुत सारा हलवा खाने को मिला।

रामू ने हलवा खाना आरम्भ किया। एक कटोरी हलवा खाते ही उसका पेट भर गया। जैसे ही वह उठने को हुआ उसकी बडी बहन ने उसे टोक दिया। "तुम्हे सातो कटोरी हलवा खाना पड़ेगा। सातो कटोरी हलवा खाकर ही तुम यहाँ से उठ सकते हो" उसने कहा।

रामू ने जोर लगाकर एक कटोरी हलवा और खा लिया। "अब तो और बिल्कुल नहीं खा सकता", कहते हुए वह उठने को हुआ। उसकी बड़ी बहन ने फिर अपनी पहली बात दोहराई "तुम्हे सातो कटोरी हलवा खाना पडेगा। सातों कटोरी हलवा खाकर ही तुम यहाँ से उठ सकते हो।" रामू ने उठने की कोशिश करते हुए कहा "कही सात कटोरी हलवा भी एक दिन में खाया जा सकता है? और मै कल खा लूंगा।" रामू के इतना कहते ही छोटी बहन ने बेलन उठाया और बड़ी बहन ने गुस्से से लाल होकर पूछा, "जब तुम सात कटोरी हलवा एक दिन मे नही खा सकते हो तो सात दिन का स्कूल का काम एक दिन मे कैसे कर सकते हो ?"

रामू को बात समझ में आ गई और अपनी बहनों से क्षमा माँगते हुए रोज का काम रोज करने का वचन दिया।

रामू के माता-पिता जो यह सब चुपचाप देख रहे थे अपनी हँसी न रोक सके। वे भी रसोई मे आ गए। सब लोग जी भर कर हँसे और सबने बचे हुए पाँच कटोरी हलवे का आनन्द लिया।

"छाते वाला लड़का"

दोपहर का समय था। न धूप थी न वर्षा। बहादुर आँगन मे छाता लगाए एक किताब पढ़ रहा था। ताशो उधर से निकला। बहादुर को छाता लगाकर पढते देख उसे बडा आश्चर्य हुआ। "तुम छाता लगाकर क्यों पढ रहे हो बहादुर ?" ताशो ने पूछा। "क्योंकि मुझे डर है कही मेरी पढ़ाई उड न जाए।" लड़के ने उत्तर दिया।

There is a large number of stories developed through this technique All cannot be reproduced here.

In another endeavour, children were asked to write the autobiographies of plants, rivers, and mountains "Lucky Mango" and "River" are fine pieces of creative writing. They cannot be given here due to their length For reference one can go through the series entitled "Children Write" (Jangira, in press)

Keeping the success of the experiment in view, a variety of such pictures have been introduced in Tibetan, Lepcha, Limboo and Nepali textbooks in Sikkim. The author received a number of these types of creative stories through the teachers who were trained by him. The experiment suggests that children have the potential and can exhibit a reasonable quality of creative writing, given the opportunity and the guidance.

Some children's magazines also give pictures for writing stories The quality of their effort is not certain. To me it appears that the photographs given for story writing may be creative in themselves, but many of them do not have the potential to stimulate creative thinking Semiprojective photographs and pictures are good for this purpose This may be kept in mind in selecting the photographs or pictures. Secondly, the follow-up is also inadequate, obviously for the reason that the objective before the editor is different.

VI The Message

Several actionpoints have emerged from the foregoing discussion on children's literature and the development of creativity in children Along with quantitative expansion of children's literature, steps

should be taken to improve its quality. Graded literature suited to the varied needs of the children may be developed not only in English and Hindi, but in the regional languages as well Creative literature and the objectives of creativity which have been hitherto neglected may be given due emphasis A genre of children's writers, illustrators, designers and publishers may be developed They should have the benefit of research on various aspects of children's literature which is conspicuous by its absence at present

When it has been demonstrated that all children have creative potential and it is possible to develop this potential through various media using different elements and processes of creativity, the vital media of children's literature should be fully utilised. Innovative techniques for developing children's literature to this end may be tried out and used. The sporadic attempts which have been made by private and government agencies may be synthesised and made available to those involved in the preparation of such literature The NCERT can play a vital role in this direction. Meets of writers, like the one here, will be quite useful The scope of such meets can be widened to cover various aspects of this venture It is hoped that the present generation of children and the generation of tomorrow will get the advantage of quality literature, which in its turn, will contribute towards giving a fillip to their creativity in whatever meagre way it can.

REFERENCE

ANDERSON, H. H. — *Creativity and its Cultivation*, Harper and Bros, 1959

FABUN, DON. — *You and Creativity*, Glenco Press, 1969.

GHISELIN, BREWSTER (Ed) — *The Creative Process* A Mentor Book, The New American Library, 1963.

JANGIRA, NK (Ed.) — *Lucky Mango*, Children Write Vol I, National Publishing House, Delhi, (in press)

JANGIRA, NK, (Ed.) — *Endless Journey*, Children Write Vol II. National Publishing House, Delhi (in press)

MEEKER, MON, — *The Structure of Intellect, Its Interpretation and Uses*, Charles E. Merrill, 1969.

PARNES, S J. — *Creative Behaviour Guidebook*, Charles Scribners & Sons, 1967.

RALPH, J. H. — Aesthetic Pleasure and the Creative Process, *Journal of Humanistic Psychology*, Fall, 1966.

RENZULLI, J S. — *New Direction's in Creativity*, Harper and Row, 1973.

SMITH, PAUL (Ed.) — *Creativity, An Examination of the Creative Process*, Hastings House, 1959.

TAYLOR, C. W. and TREFINGER, D. J. — *Instructional Media and Creativity*, John Wiley and Sons, 1966.

TORRANCE, E PAUL — *Rewarding Creative Behaviour · An Experiment in Classroom Creativity*, Prentice Hall, 1965.

बाल-साहित्य द्वारा वैज्ञानिक अभिरुचियों का विकास

डा० हरिकृष्ण देवसरे

बच्चों के लिए ज्ञान-विज्ञान व अन्य विविध विषयो पर लिखे जाने वाले साहित्य का यह दुर्भाग्य रहा है कि लेखक अपने को ज्ञान का आगार मान लेता है और बच्चों को परम अज्ञानी। फिर वह अपने ऊँचे आसन मे पुरोहितो की तरह अपनी बात समझाता है। बच्चो से कहता है 'जरा इस स्विच को दबाओ तो।' उन्हें बताता है कि 'इसे बिजली कहते है।' फिर सिलाई की मशीन को काली-काली चीज कहता है। यह सब पढकर बच्चों को क्या लाभ होगा, उनका कितना मनोरजन होगा? यह बात सहज ही सोची जा सकती है।

आज अधिकांश लेखक बच्चों का वही ज्ञान-स्तर मानकर बाल-साहित्य लिखते हैं जो तीस-चालीस या पचास वर्ष पूर्व बचपन में उनका अपना ज्ञान-स्तर था। इसका परिणाम यह होता है कि जो बाल-साहित्य लिखा जाता है वह बच्चो के परिवेश से बिलकुल कटा होता है, उसमें बच्चों की जिज्ञासाओं का समाधान नहीं होता, उसमें बडो द्वारा बच्चो को बताने के लिए कुछ पूर्व-निर्धारित बातों का विवेचन मात्र होता है।

विज्ञान के इस युग मे जहाँ यह आवश्यक है कि बच्चे विज्ञान की दुनिया के बारे में नई-नई जानकारी प्राप्त करे और अपनी जिज्ञासाओ को शात करे, वही यह भी ध्यान रखना होगा कि आज के वैज्ञानिक वातावरण ने बच्चो की बुद्धि-लब्धि 'आई० क्यू०' में भी परिवर्तन किया है। जिस उम्र मे बच्चे बाल-साहित्य की पुस्तकें पढने योग्य होते हैं उस उम्र तक पहुँचते-पहुँचते वे बहुत सी बातो को, उनके आकार, रूप-रग, नाम आदि के बारे मे जान जाते है। बिजली, साइकिल, रेडियो, सिनेमा, ट्रांजिस्टर, रेलगाड़ी, मोटर आदि ऐसे ही कुछ नाम है। अब बच्चो से यह कहना कि 'दैत्य की तरह काले रग वाला धुआँ उडाता हुआ पटरियो पर दौडने वाला भला कौन है?' मै समझता हूँ बच्चो के सामने अपना ही अज्ञान प्रकट करना है कि हम यह नही जानते कि हमारे बच्चे कितना जानते है और क्या जानना चाहते हैं?

विज्ञान का क्षेत्र इतना विस्तृत है कि बच्चों को अपने चारों ओर अनेक प्रश्न-चिह्न दिखाई देते है और वे उनका उत्तर अपने स्तर के अनुकूल खोजने का प्रयत्न करते हैं। आज के बच्चों के लिए जिज्ञासा का विषय यह नही है कि कमरे मे बिजली का प्रकाश कैसे हो गया, समस्या यह है कि वह बिजली कहाँ से आती है, बल्ब कैसे जलता है, अन्धेरा हो जाने पर बिजली में कहाँ, क्या खराबी हो गई। इसलिए आज के बच्चों में वैज्ञानिक अभिरुचियो के विकास के लिए बाल-साहित्य लिखने से पूर्व यह जान लेना अनिवार्य है कि जिस परिवेश और वातावरण मे

बच्चे रह रहे है उसका उन पर कितना प्रभाव है और वे वास्तव मे किन प्रश्नो का समाधान चाहते है। यह अपने आप मे विस्तृत अध्ययन का विषय भी हो सकता है, किन्तु बच्चो के लिए सही बाल-साहित्य निर्माण की यह एक आवश्यकता भी है।

विज्ञान की सैद्धान्तिक जानकारी देने के लिए स्कूल की पाठ्य-पुस्तकें तो होती ही है। इसलिए बाल-साहित्य का उद्देश्य बच्चो को उसी सैद्धान्तिक जानकारी से दुबारा बोझिल बनाना नही है। बाल-साहित्य का उद्देश्य तो उनका मनोरजन करना, उनके मन मे सहज ही उठने वाले प्रश्नो का उत्तर प्रस्तुत करना है। दूसरे शब्दो मे, वैज्ञानिक अभिरुचि जागृत करने के उद्देश्य से लिखा गया बाल-साहित्य बच्चों के लिए पूरक बनकर उपस्थित हो। इसलिए बाल-विज्ञान-साहित्य की रचना के विषय में यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है कि जो भी बातें बताई जाएँ, वे बच्चों के स्वय के अनुभवो और उनके आसपास के वातावरण के संदर्भ में बताई जाएँ। शायद इसीलिए रूसो ने कहा था कि बच्चे को आग के पास उस समय तक हाथ ले जाने दीजिए जब तक जलने का खतरा न हो। आग की गर्मी अनुभव करके ही वह समझ सकेगा कि आग क्या है ?

विज्ञान की अनेक ऐसी बाते है जो अपने आप में स्वय बडो रोचक होती है, किन्तु कुछ शुष्क और दुर्बोध भी होती है। इसलिए प्रयत्न यह किया जाता है कि विज्ञान सम्बन्धी बातो को इतनी रोचक शैली में बताया जाए कि बच्चों को उसे पढकर किसी तरह का बोझ महसूस न हो। यह शैली कथा की हो सकती है, किसी वैज्ञानिक तीर्थ के यात्रा-ससमरण के रूप में भी हो सकती है, पत्र या डायरी शैली भी हो सकती है। लेकिन इतना अवश्य ध्यान रखना होगा कि विषय-वस्तु के विवेचन मे कही भी तथ्यात्मक भूल नही होनी चाहिए। कुछ लोगों ने इसीलिए इस बात का भय प्रकट किया है कि विज्ञान की कथाएँ लिखते समय लेखक कल्पना की उड़ान मे यदि तथ्यात्मक भूल कर गए तो उससे बच्चो को गलत जानकारी मिलेगी। उदाहरण के लिए यह कहना कि 'साँप दौड़ने लगा' या सर्दी के मौसम का वर्णन हो और पेडो पर आम फले होने की चर्चा की जाए।

बच्चो के लिए पुस्तक लिखते समय दो कठिनाइयाँ विशेष रूप से लेखको के सामने आती है, एक तो उनकी रुचियो की भिन्नता और दूसरी शहरी और ग्रामीण बच्चों का पृथक्-पृथक् परिवेश। यह सही है कि अब गाँवो मे बिजली पहुँच रही है, वैज्ञानिक उपकरण पहुँच रहे है, फिर भी गाँवो और शहरो के बच्चों की रुचि-भिन्नता के साथ बुद्धिलब्धि की भिन्नता कम अधिक अनुपात मे होती ही है। इस भिन्नता को दूर करना तथा दोनो के अनुकूल एक ही पुस्तक में जानकारी देना ही लेखकीय कौशल होता है।

कहानी एक ऐसी विधा है जिसके माध्यम से बच्चों को कठिन से कठिन विषय भी सरलता से समझाया जा सकता है। हिन्दी में कुछ लोगो ने इसका विरोध किया है और यह कहा है कि हर बात को 'कहानी की चाशनी' मे नही ढालना चाहिए। किन्तु विश्व का श्रेष्ठ बाल-साहित्य यदि आप देखे तो उसमे इसी विधा को प्राथमिकता दी गई है। आज की परीकथाओ मे परिवर्तन की जो बात कही जा रही है, उसका उद्देश्य भी यही है कि बच्चे काल्पनिक और झूठे ससार से निकलकर आधुनिक दुनिया की बातो को जानें और यथार्थ के धरातल पर विचरण करे। क्या आज के विज्ञान की बातें किसी सुन्दर परीकथा से कम हैं ? क्या आज के विज्ञान ने परीकथाओ की कल्पना को साकार नही किया है ? फिर क्यो न हम परीकथाओ के माध्यम से आज के बच्चो को विज्ञान की बाते बताएँ। उदाहरण के लिए एक छोटी-सी कथा प्रस्तुत है। एक बच्चा बहुत नटखट है। पिता के जाते ही उनके कमरे मे जाता है। उनकी चीजो को उलट-पुलट कर देखता है। इसके लिए उसे कई बार डाँट भी पड़ चुकी है लेकिन वह नही मानता। एक दिन वह एक

डिबिया खोलता है, जिसमे आलपिनें भरी हुई थीं। किसी के आने की आहट के कारण, रंगे हाथों पकड़े जाने और डाँट के डर से वह घबरा जाता है। उसके हाथ से डिबिया छूट जाती है, आलपिनें जमीन पर बिखर जाती है। कोई दरवाजे तक आकर लौट जाता है। वह लड़का एक-एक आलपिन उठाकर डिबिया मे रखने लगता है। यह काम उसे काफी कठिन लगता है। सोचता है कि इस समय अगर कोई परी उसकी मदद कर देती तो कितना अच्छा होता। उसी समय किसी के आने की आहट होती है। वह जल्दी-जल्दी अपनी मुट्ठी मे आलपिनें भर कर उन्हे छिपाना चाहता है, जिससे उसका हाथ लहू-लुहान हो जाता है। देखता है कि उसकी बड़ी बहिन आई है। वह डाँटती नहीं, मुस्कराकर उसके हाथ मे चुभी आलपिनें निकालती है, दवा लगाती है। फिर छोटी-सी जादू की छड़ी निकालकर सारी आलपिनें जल्दी-जल्दी डिबिया मे रख देती है। इस बीच वह बालक उसे बड़े ध्यान से देखता रहता है और इस कल्पना मे डूब जाता है कि यह कोई परी ही है जिसने उसकी बात सुन ली। स्पष्ट है जिस बच्चे ने यह कहानी पढ़ी होगी तो जब वह चुम्बक के बारे में कक्षा मे पढेगा तो उसे इस कहानी को याद करके सुख भी मिलेगा और वह अपने को यथार्थ से जुड़ा हुआ पाएगा। बच्चो को ऐसी कहानियाँ दी जा सकती हैं जिनमे आधुनिक विज्ञान के तथ्यो को अप्रत्यक्ष रूप से बताया गया हो। इन कहानियो मे जहाँ बच्चो का मनोरजन होगा, वही उनकी वैज्ञानिक अभिरुचि का भी विकास होगा।

विज्ञान के कई आविष्कार बडी रोचक और चमत्कारिक स्थितियों में हुए, कुछ के पीछे रोमाचक घटनाएँ जुड़ी हुई है और कुछ तो खेल-खेल मे ही हो गए। ऐसे आविष्कारों की रोचक कहानियों को बच्चे बड़ी रुचि से पढते है। इनके वर्णन मे जहाँ लेखक अधिकाधिक कौतूहल उत्पन्न कर सकता है, वही तथ्यात्मक जानकारी गलत न होने पाए, इसके लिए भी उसे सावधान रहना पड़ता है। यही स्थिति वैज्ञानिकों के बचपन या उनके जीवन की कथाओं पर भी लागू होनी है।

अंतरिक्ष-विज्ञान की प्रगति के साथ साथ विज्ञान-कथा-साहित्य मे भी बहुत प्रगति हुई है। अतर्ग्रहीय यात्राओं और दूसरी दुनिया की कल्पना पर आधारित अनेक पुस्तके लिखी गई है और लिखी जा रही है। इन पुस्तको से बच्चों की वैज्ञानिक अभिरुचि का विकास तो होता ही है, उनकी वैज्ञानिक कल्पनाओ को भी बल मिलता है।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, विज्ञान की दुनिया स्वय में आज की एक बहुत बडी परीकथा है। हमारा प्राकृतिक परिवेश कितनी ही रहस्यमयी परीकथाओं मे भरा पड़ा है और यदि हम उसे सुलझाने बैठे तो अनेक परीकथाओ की रचना हो जाए। बादल, बिजली, आँधी, तूफान, भूकंप, बाढ, नदियाँ, झरने, पहाड़, जगल, खनिज आदि कितने ही रहस्य बच्चों की जिज्ञासा बने रहते है और उन्हे हम एक-से-एक रोचक कथा द्वारा सुलझा सकते है। सदियो मे मनुष्य इन रहस्यो को जानने के लिए प्रयत्न करता रहा है, अनेक कहानियाँ इनके बारे मे प्रचलित रही हैं। फिर आज जबकि विज्ञान इन रहस्यो को उद्घाटित करता जा रहा है तो हम क्यों नही नई, सार्थक और यथार्थवादी कथाओ की कल्पना कर पाते ?

वास्तव मे बच्चो के लिए लिखे जाने वाले साहित्य का उद्देश्य आज अनिवार्य रूप से यह है कि वह बच्चो मे आज के वैज्ञानिक युग के अनुरूप मानसिकता को जागृत करे। कितने ही लोग आज विज्ञान पढकर भी निजी जीवन मे पुरानी परम्पराओं को छोडकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं अपना पाते। उसका कारण यही है कि अपने बचपन और छात्र जीवन में उन्होंने पाठ्यपुस्तको मे तो विज्ञान पढा किन्तु वे वैज्ञानिक मानसिकता तैयार नही कर पाए। इसका ही परिणाम है कि आज भी हमारे यहाँ विज्ञान के प्रति साधारण आदमी मे वैसा वातावरण नही तैयार हो सका है, जैसा होना चाहिए था।

बाल-साहित्य का यह एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है और इसे पूरा करना ही उसकी रचनात्मक सार्थकता होगी।

आज विज्ञान बडी तेजी से बढ़ रहा है। बडे-बडे आविष्कार हो रहे है। किन्तु इनमे कुछ ऐसे भी हैं जिनसे बच्चो में मानवीय सवेदना के सस्कार नही उभरते। कम्पयूटर आदि ऐसे ही आविष्कार है। बाल-विज्ञान-साहित्य में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि मानवीय संवेदना के तत्त्वो का हनन न हो, भले ही इसके लिए वैज्ञानिक आविष्कारो की बुराई की चर्चा खुलकर क्यो न करनी पडे। बच्चे के मन पर भयानक और विस्फोटक आविष्कारो के प्रति एक विचित्र भय रहता है जिससे उन्हे मुक्त कराना भी बाल-साहित्य का दायित्व है।

बाल-साहित्य द्वारा भाषायी कुशलताओं का विकास

डा० एच० पी० राजगुरु

आधुनिक युग मे बालक के लिए पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त बाल-साहित्य की विभिन्न विधाओ का पठन एक अनिवार्य आवश्यकता है जिसे आज तीव्रता से अनुभव किया जा रहा है। बालकों के लिए यह आवश्यकता इसलिए भी अधिक महत्व प्राप्त करने लगी है क्योकि यह युग ज्ञान के विस्फोट का है और उसके परिवेश मे चारो ओर जो कुछ घटित हो रहा है, उन प्रभावो से वह अछूता नहीं रह सकता। नगर अथवा ग्राम, परिवर्तन किसी भी परिवेश मे आएँ उनका प्रभाव सम्पूर्ण समाज पर होना अवश्यम्भावी है। ये परिवर्तन ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला आदि क्षेत्रों मे हुए है, इस तथ्य से हम इन्कार नही कर सकते। इसके साथ ही शिक्षा के उद्देश्यों मे भी व्यापक परिवर्तन हुए है। लिखने-पढने और कुछ हिसाब किताब कर लेने के सीमित क्षेत्र के अतिरिक्त शिक्षा ने व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है और शिक्षा उसके व्यवहारो मे वाछित विकास करने का भी दावा करती है। अतः उन सभी परिवेशों को अधिक सशक्त एव गतिशील बनाने के प्रयास किए जा रहे है जो व्यक्ति के विकास मे सहायक माने गए है। बाल-साहित्य की रचना और यह ललक कि इस साहित्य को बालक अधिकतम सख्या मे पढ पाए—इसी उद्देश्य से प्रभावित आकांक्षा प्रतीत होती है।

अधिक जानने की इच्छा, जिज्ञासा और जानकारी से आनन्द प्राप्त करने का प्रयास कई रूपो में प्रकट होता है। प्रत्यक्ष देखकर अथवा उसके अभाव मे विशिष्ट वस्तु, व्यक्ति, विचार और भावों एवं प्रसगों के बारे मे मौखिक अथवा लिखित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास एक मूल प्रवृत्ति है, एक आवश्यकता है जिसकी पूर्ति व्यक्ति एकाधिक विधियो से करता आया है। यह एक मानवीय प्रवृत्ति है और समाज सापेक्ष्य है—अतः इस प्रवृत्ति का समाहार सकेतों, शब्दो, गीत, सगीत, कला, अभिनय आदि के माध्यम से सर्वदा होता रहा है। आनन्द प्रदान करने और आनन्द प्राप्त करने का क्रम कोई नया नहीं है। समय के साथ साधन अवश्य ही बदलते रहे है।

अभिव्यक्ति के माध्यम बदलते रहे है। अवश्य ही आज उन माध्यमों को अधिक लोकव्यापी बनाने का प्रयत्न चल रहा है। लोकजीवन के बदलते हुए आयामों के अनुरूप अभिव्यक्ति के आयाम भी बदलते रहे है। लिखित और मुद्रित माध्यमो की सुलभता के कारण अभिव्यक्ति के लोकव्यापीकरण को बल मिला है और उसे अधिक लोकप्रिय बनाने का आग्रह अत्यत सहज एव स्वाभाविक है। आवश्यकता है कि यह लोकव्यापीकरण गुणधर्मिता के साथ हो, अपने सहज स्वानुभाव, मौलिक विवेक तथा लोकग्राहीपन की विशिष्टताओ के कलेवर और लोक-

कल्याण की आत्मा के सामंजस्य को रखता हो।

बाल-साहित्य इसी अभिव्यक्ति के सुलभ माध्यम का नाम है जहाँ ज्ञान का अन्त आनन्द की उत्पत्ति में होता है, जहाँ ज्ञान का परिवेश साधना और औपचारिकताओं के प्रतिबंधों से मुक्त होता है। किन्तु जो माननीय जीवन के सार्वजनीन मूल्यों की उपलब्धि में भी सहायक होता है, मनोरंजक होते हुए भी वह सृजन एवं स्थायी संरचना की प्रक्रिया में भी योगदान करता है। बालकों की अपनी दुनिया है, अपनी माँगे है, अपनी आवश्यकताएँ है, अपनी चुनौतियाँ है, अपनी मानसिक एवं संवेगात्मक जरूरतें है और उनके लिए रचित साहित्य बालकों की दुनिया की अभिव्यक्ति का माध्यम सही अर्थों में बन सके, यह संभवतः बाल-साहित्यकारों के लिए अत्यन्त जोखिम से भरा काम है।

बाल-साहित्य के पठन का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र है, ऐसा स्वीकार कर लेना कठिन ही है। बाल-साहित्य के पठन के द्वारा बालक आनंद से ओत-प्रोत हो जाएगा और उसके चिन्तन-मनन के जगत में, वृत्तियों में, भाषा के विभिन्न रूपों में, उसके चमत्कार एवं रूप सौन्दर्य का उसके मनोजगत पर कोई प्रभाव नहीं होगा, यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है। पठन, बाल जगत के सामान्य विकास-क्रम की आवश्यकता है। वह पढ़ने के साथ-साथ यह भी जानना चाहता है कि लेखक के कथन का आशय क्या है? वह कितना महत्त्वपूर्ण है और उसका लाभ कहाँ तक उठाया जा सकता है? बाल-साहित्य मनोरंजन के साथ ही साथ बालक में उच्च और श्रेष्ठ संस्कारों की रचना करने तथा उसे एक जागरूक एवं विचारवान उत्तरदायी नागरिक बनाने में भी सहायक होता है। मनोरंजक कथा, कविता, गीत, नाटक, निबंध, पत्र एवं अन्यान्य विषय-सामग्री मौखिक एवं लिखित माध्यमों से अच्छे व्यक्ति के निर्माण में सहायक होती है, इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते।

समूचे मानवीय अथवा बाल व्यवहार को बाल-साहित्य अधिक प्रभावित करता है क्योंकि, वह सहज और मनोरंजक है तथा उनके भाषायी व्यवहार को निर्धारित, परिष्कृत एवं विकसित करता चलता है। न चाहते हुए भी बाल-साहित्यकार बालक के भाषा-ज्ञान को, भाषा के व्यवहार पक्ष को, चिन्तन-मनन की योग्यता को, निहित भावात्मक संकेतों को, समझने की क्षमता को, स्वयं की अभिव्यक्ति के अनुरूप संरचना-दक्षता को भी निर्मित करता है। कहानी, कविता, नाटक के पठन की अपनी विशिष्ट शैलियाँ है, पठन की ये शैलियाँ अभिव्यक्ति को जो सौन्दर्य प्रदान करती है, अर्थग्रहणता में इनका कितना प्रभावी हाथ होता है—हम सभी इस बात को मानते है। मनोरंजन के साथ इन सभी कुशलताओं का विकास-कार्य जाने-अनजाने चलता रहता है—भाषायी व्यवहार की संरचना स्वयं होती रहती है।

अतः यहाँ उन कतिपय भाषा-संबंधी कुशलताओं का उल्लेख करना उपयुक्त नहीं होगा जिनके विकास की संभावना किसी भी सोद्देश्य एवं योजनापूर्वक निर्मित साहित्य में अवश्य ही रहती है। बाल-साहित्य के लेखक अपनी मौलिकता एवं स्वतन्त्रता के साथ-साथ अपनी रचनाओं में इनका भी ध्यान रखें तो बालकों के भाषायी व्यवहार के विकास में सहायता मिलेगी।

1 (अ) औपचारिक शिक्षाक्रम द्वारा बालकों की यांत्रिक भाषायी कुशलताओं का विकास हो जाता है, जैसे लिखित शब्दों की पहचान, लिपि-चिन्हों को शब्द, वाक्य एवं वाक्यों में बाँध कर पढ़ने की योग्यता, विराम-चिन्हों के अनुसार पढ़ने की योग्यता।

(ब) विषय-वस्तु को पढ़कर (मौन अथवा सस्वर) समझने की योग्यता।

(स) बोलकर एवं लिखकर अपने भावों की अभिव्यक्ति की क्षमता।

(द) सुनकर भी समझने की योग्यता।

(इ) बालक भाषा की व्यवस्था (व्याकरण) को भी समझने लगते है।

2. (अ) सामान्यतया इसमें बालक के भाषा-विकास

की गति धीमी रहती है। पाठ्यपुस्तक तक ही विषयवस्तु की विविधता सीमित रहने के कारण उसे यथोचित अभ्यास के अवसर नही मिलते।

(ब) वह पाठ्यपुस्तक की यद्यपि सुव्यवस्थित किन्तु कृत्रिम भाषा से बँध जाता है।

(स) उसका स्वाभाविक विकास, चिन्तन एव अभिव्यक्ति अवरुद्ध हो जाती है।

(द) ऐसी स्थिति मे वह भाषा की सृजनात्मकता से अनभिज्ञ रहता है। उसके वैभव से अछूता रहता है और परिणामस्वरूप वह भाषा की यात्रिक कुशलता की प्राप्ति के स्तर से थोड़ा ही आगे बढ पाता है।

3. उसके भाषा-ज्ञान की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक है कि बालक को सुनने के पर्याप्त अवसर मिले, बोलने के अवसर मिले, पुस्तक पढने के अवसर मिले तथा उसी प्रकार लिखने के भी अवसर प्राप्त हो।

बाल-साहित्य द्वारा बालक को बहुत कुछ पढ़ने का अवसर मिलता है। कभी वह परियो के देश की सैर करता है, कभी वह विज्ञान के चमत्कारों का साक्षात्कार करता है, कभी प्रकृति की सुषमा और सौन्दर्य का पान करता है, कभी वन-प्रान्तर, वन्य प्राणियो की साहसिक और आश्चर्यजनक क्रीडाओ को देखता है और कभी विभिन्न देशो, मानवों के विभिन्न रूपों के बीच गुजरता है, नए-नए अनुभवो के द्वारा बहुत कुछ सीखता हुआ भाषा और भावो की परिपक्व भूमि की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार बच्चा जितना अधिक मात्रा मे और जितना अधिक श्रेष्ठ बाल-साहित्य पढ़ेगा उसका भाषा-ज्ञान और भाषायी व्यवहार उतना ही पुष्ट और परिपक्व होगा। इस प्रकार साहित्य का पठन उसे अधिक मनन और चिन्तन के लिए प्रेरित करेगा, उसकी विचार-विधियो को व्यापक बनाएगा, उसे भाषा के नए-नए प्रयोगो, मुहावरों और शैलियो से परिचित कराएगा, उसके भावो को उभारेगा और उसकी ग्रहण-शक्ति को तीव्र करेगा।

भाषा क्या है ? जीवन की विविध परिस्थितियों की विविध सस्थितियो में व्यक्ति की मानसिक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति ही तो भाषा है। जीवन की अन्य परिस्थितियों की तरह ही उसकी भाषा-सपत्ति भी सीमित ही है। परन्तु जब उसे अन्य व्यक्तियो के अनुभवो को जीने का अवसर प्राप्त होता है तो उसे व्यापक जन-जीवन से परिचित होने का भी अवसर मिलता है। इस नए अनुभव-जगत के प्रति उसकी संवेदनशीलता उसके भाषा-ज्ञान को समृद्ध बनाती है, उसके भाव जगत मे सृजनात्मकता के बीज अकुरित करती है, और उसके भाषायी व्यवहार को परिष्कृत एव सतुलित भी करती है। इसी प्रकार बाल-साहित्य बालक को देशकाल की सीमाओ मे व्याप्त जड़ एव चेतन जगत, जन्तु एव मानव जगत से परिचित होने का अवसर प्रदान करता हैं। उसे पुराण एवं इतिहास की जानकारी मिलती हैं। वास्तविक एव काल्पनिक घटनाओ की घाटियो मे वह विचरण करता हैं। देश-विदेश की कहानियाँ एव जन-जीवन उसके मानस पटल पर उभरते है, जीवन की दुःसहता एव कष्टो से उसका परिचय होता है, जीवन की विपरीत संस्थितियो के दर्शन होते है, ज्ञान-विज्ञान और सृष्टि के वैविध्य की जानकारी उसे प्राप्त होती है, खेल-खिलौनों के मोहक आकर्षण से लेकर आधुनिकतम वैज्ञानिक करिश्मों से उसका परिचय होता है। घर मे बैठे ही इस विराट भूमि का परिचय उसे सहज ही मिलता रहता है। इन सबके द्वारा बालक का परिवेश ज्ञान व्यापक होता है और यह स्वाभाविक है कि उसका परिवेश-पटल जितना ही व्यापक होगा भाषा का भण्डार भी उतना ही समृद्ध होगा। व्यापक जीवन की, व्यापक परिस्थितियों की विविधता बालक के भाषा ज्ञान को समृद्ध करती है।

अर्थ बोध क्या है ? पढकर समझना अथवा समझ कर पढ़ना। किसी भी पठित वस्तु को बालक

सही अर्थों में समझ लेते है इसके लिए आवश्यक निकष है :

1. सारांश समझ लेते है।
2. पठित वस्तु में निहित कार्य-कारण संबध को पहचान लेते हैं।
3. उसमें निहित संभावित परिणामो, अनुभवो को समझकर निष्कर्षों तक पहुँच जाते हैं।
4. वर्णित विषय-सामग्री की व्यजना को समझकर उसके प्रति अपनी प्रतिक्रियाओ को सजग रख सकते है।
5. विषय वस्तु के पठन के आधार पर अपना मन्तव्य बना लेने की क्षमता प्राप्त कर लेते है।
6. वे वर्णित तथ्यों की तुलना अपने पूर्व अनुभवो के साथ कर लेते है। तथा उनका वर्गीकरण कर सकते हैं।
7. समय पाकर पठित सामग्री की व्याख्या और समीक्षा भी करने की क्षमता प्राप्त कर लेने है।
8 उठाई गई समस्याओ को समझते है और उनके हल हेतु अपने पूर्व ज्ञान का उपयोग करते हैं।
9. विचारो एवं घटनाओ को क्रमबद्धता के साथ समझ लेते है।

यह प्रक्रिया जितनी स्पष्ट एव तीव्र होगी, भाषा-ज्ञान भी उतना ही परिपक्व होगा और बालक को प्रचुर मात्रा मे बाल-साहित्य के पठन के जितने अधिक अवसर मिलेंगे उतना ही उसाके भाषा-ज्ञान अधिक विकसित होगा।

परीकथाएँ, पौराणिक कथाएँ, इतिहास, भूगोल, यात्रा-विवरण, संस्मरण, नीति एव बोध कथाएँ, खेलकूद, खेल-खिलौने, महापुरुषों की जीवनियाँ, साहस एव रोमाच भरी कथाएँ, देश-विदेश के जन-जीवन की झाँकियाँ, जन्तु-जगत के विवरण, ज्ञान-विज्ञान की चमत्कार, लोक-कथाएँ—ऐसा बाल-साहित्य बालको के औपचारिक भाषा-ज्ञान को परिपक्व करने के लिए नितान्त आवश्यक है। इसक अभाव मे उसका भाषा-ज्ञान कृत्रिम, पंगु और अधूरा ही रह जाएगा।

बाल-साहित्य के लेखन एव अध्ययन को गुणा त्मक और प्रभावपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक है कि लेखक, अभिभावक, शिक्षक, बाल-साहित्य के उद्देश्यो को अधिक व्यापक सदर्भो मे ले, जिससे पाठक मे भाषा एव भाव पक्ष दोनो का ही सम्यक विकास किया जा सके। बाल-साहित्य के लेखन मे अत्यन्त स्वाभाविक रूप मे भाषा-कुशलताओ का निर्वाह किया जा सकता है और बालकों को सजगता-पूर्वक पठन के लिए प्रेरित किया जा सकता है। आनन्द एव औत्सुक्य के माध्यम से व्यक्ति एव उसके व्यवहार के विकास की माँग की पूर्ति की जा सकती है।

Children's Literature : Its Place In Education

Dr. U. S. CHAUDHARI

Introduction

"Culture" says White-head (1962) "is the activity of thought, and receptiveness to beauty and humane feeling. Scraps of information have nothing to do with it. A merely well-informed man is a most useless born on God's earth. What we should aim at producing is man who possesses both culture and expert knowledge in some special direction". Education neither begins nor ends with acquisition of knowledge. In fact, it is a continuous quest for new ideas, new dispositions and new attitudes. Children's literature, besides being a source of delight and aid to learning, is an important medium of developing critical qualities of mind and durable qualities of character.

A child is a human being in embryo, a man to be, and we are responsible to the future for him. Everything starts in childhood. All human qualities are planted in childhood. It is, perhaps easier to educate a person from his first steps in life than to re-educate him when he has already formed. That is why we should not look at books for children merely as entertaining literature, as nothing but play. A tremendous educational role was emphasized in his time by Leo Tolstoy, who besides, put his words to practice by writing books for children. In Russia, America and Japan, children's literature is considered a great cultural and educational phenomenon, and creation of books for children is a matter of state importance there.

Immediate Vs. Beyond

Literature and personal reading contribute notably to the enrichment of the human spirit and the moulding of the human personality. Unless the need of quality books for children is met satisfactorily, observes Mr. justice H.R. Krishnan (1961), there is a real danger of our children's education being incomplete. Children's literature and personal reading are, perhaps, the most neglected aspects of Indian education today. In the small quantity of indifferently produced children's books, there is over emphasis upon the immense adult problems of society at the expense of the individual development of boys and girls in the spiritual, aesthetic and creative aspects. Authors of children's books and curriculum designers,

in their enthusiasm for giving greater emphasis to the weighty aspects of life and society, or for relating all reading to social and ethical purposes, are giving secondary importance to children's own interests and delights in the books prepared for them. This 'here and now' centrism and utilitarian approach to reduce reading and expression to 'tool' aspect is atrophying the vision and starving the imagination of the children and adolescents. They are being deprived of the romance of the remote and the lure of beyond, which brings joy, enrichment and added range of experience into the child's life (Varma, 1967).

Woodberry (1922) cites a critic, saying that, "literature is not an object of study, but a mode of pleasure; it is not a thing to be known, but to be lived." Children have a right to enjoy together and individually, books which appeal to their imagination, offer them adventure, tickle their sense of humour, or give them opportunity to transcend the bounds of time, place and circumstance. A love of reading is one of the greatest gifts which school or home can give to children, and love of reading is achieved first of all through finding pleasure in books (Smith, 1949).

Reading : A glass that widens many horizons

Reading, says Gates (1949), is not a simple mechanical skill, nor is it a narrow scholastic tool. Properly cultivated, it is essentially a thoughtful process. To say that reading is a "thought getting" process is to give it a too restricted definition It should be developed as a complete organization of patterns of higher mental processes. It can and should embrace all types of thinking, evaluating, judging, imagining, reasoning, and problem-solving. Indeed, it is believed that reading is one of the best media for cultivating many techniques of thinking and imagining. But, reading is not to be regarded as confined to mental activities. The dynamic and emotional processes are also involved. In wholehearted reading activity, the child does more than understand and contemplate His emotions are stirred, his attitudes and purposes are modified. Indeed, his innermost being is involved.

Reading has many values in school and extra-school activities. The close relationship of reading ability to general school success has been pointed out frequently. One important trend in modern programmes is the conception of reading, not as an end in itself, but as a tool to be used in all curricular activities. Reading is a key that unlocks many doors, a glass that widens many horizons. Through it a child develops his mental capacities by means of the clarifications of concepts, the organization of ideas, the improvement of problem-solving abilities, and the increase in powers of critical thinking. Through reading, he is stimulated to creative efforts along artistic, dramatic, or constructive lines. Altogether, he finds reading most useful in completing school tasks and in carrying out purposes relating to hobbies, recreation and community activities. Thus, reading helps children gain greater competence in solving practical problems, (Russell, 1949).

Moralizing and educating through children's Literature

In its attempt to educate children, children's literature acts like "Chekhov's

prosecutor", by moralizing or telling native, sentimental, fairy tales

In the charming, lyrical short story entitled, "Home", Anton Chekhov poses with characteristic straight forwardness and acuity, some essential problems of bringing up children in the family. E.P. Byvosky, a prosecutor in a circuit court comes home one day, only to hear from the governess that his seven-year-old son Seryozha has been caught smoking. Byvosky argued at length with his son that smoking was bad and therefore he should not smoke, but, this direct approach had no impact on the child's mind. His son had his own ideas of what was important and unimportant, what was good and what was bad.

To gain possession of his attention, it is not enough to imitate the language of the child but one must be able to think in the way he does. The author of children's books should learn to feel, cry and laugh together with the child. One can do nothing by logic or morality. In essence, the authors of children's books should perceive themselves as mothers and the literature as 'mother-in-print'.

On the insistence of his son, Byvosky told a story of a very old emperor who had an only son who used to smoke. Byvosky finishes the story by having the emperor's son fall ill with consumption through smoking and dying, leaving his infirm and sick old father without anyone to help him, with no one to govern the kingdom and defend the palace. Enemies came, killed the old man, and destroyed the palace. Quite unexpectedly, this native ending made an intense impression on Seryozha. He said in a sinking voice: "I am not going to smoke any more"—(Smirnova, 1968). The lesson which can be drawn from this situation created by Chekhov is that morality and truth should never be offered in their crude form, but only with embellishment, sweetened and glided like pills There are many deceptions and delusions in nature that serve a purpose, and perhaps children's literature is one of them.

Manifest and latent functions

Children's literature serves both manifest and latent functions. The manifest functions are those having to do with the enjoyment of the themes which satisfy children's needs and transmission of knowledge of a culture. Knowledge, as Bierstedt (1955) puts it, here means those parts of the culture which help the individual to choose among possible actions. Knowledge which reduces one's dependence upon chance. Knowledge, however, comprises only a small part of a total culture. If we take the whole of a culture and subtract knowledge from it, the remainder is imposing in size and dimension. This remainder too is transmitted. And it is transmitted even in the textbooks ostensibly designed only for the transmission of knowledge. Therefore, if the manifest function of children's books is to transmit knowledge, its latent function is to transmit the myths and the mores, the traditions and the legends, folkways and the superstitions, its ideologies and values which are an integral part of the culture. In an autocratic society, the latent function is encouraged to become manifest whereas in a democratic society, it remains more or less latent.

Children's literature and creativity

Einstein was of the opinion:

"imagination is more important than knowledge, for knowledge is limited". Well-written and carefully edited children's books can provide an ample opportunity for the stimulation and expansion of children's imagination and thinking. But, unfortunately majority of our children's books today lack the kind of gritty detail that slows down the reading but speeds up thinking The author perhaps assumes that young readers like to read a finished product. Therefore, the author does the thinking and very little is left for the readers to guess, to infer, to reflect, to predict and or to emphasize with the characters

Torrance (1966), impressed very much by the role of fantasy and fairy tales in developing creativity and imagination, cites an example of a Russian professor of applied mechanics who taught many of today's most outstanding Russian scientists. At the end of his distinguished career in science, he was convinced that the fairy tales had been his companion in his creative scientific achievements and that the engineer who is not brought up in his childhood on fairy tales will not become a creative engineer. Chukovsky (1963), the Russian child psychologist argues that fantasy is the most valuable attribute of the human mind and should be nurtured diligently from earliest childhood. In reply to those who oppose imaginative reading in favour of scientific, factual reading, he takes the following position :

"We must develop the child's imagination, or, at least, we must not inhibit its natural development. In this connection, the reading of fairy tales is very important for little children. We often meet parents these days who are against fairy tales. They do not make them available to their children, seeking to bring up sober, practical individuals. I always say to such parents that their children will never become mathematicians or inventors".

Children's books inhibit creation when they advocate "the one best way". They encourage creation when they organize past experiences so that the learner can grasp its value and limitations. Children deserve the right to participate in the thinking. They deserve the right to reason with raw, indigested ideas. Although, they are not ready to take over all the thinking functions of the writers, they can certainly take over part of them (Chaudhari, 1978).

Needs of the Children and Children's Literature

There is some evidence that the infant child may bring some of his needs into the world with him. These needs are in part inherited, and in part influenced by pre-natal experiences. Society and culture play a substantial part in instigating needs. It is believed that children are indoctrinated by the culture with the need for love and affection, praise and economic security among others. For the most part these needs are learned by the child. As he lives he comes to have them as needs, and then, if they are thwarted, behaviour is seriously influenced. Given a good start in life and continuing experiences of security, a person is better able to meet the frustrating situations (Raths, 1972). Here is the responsibility of the authors of children's books to recognize the

tremendous importance of the needs and interests in healthy growth and development of the children and to include such themes and stories in the books and magazines which build the 'self-esteem' of the children and satisfy their need for achievement and self-actualization. This is necessary for the proper ego-development of the children (Chaudhary, 1976).

Personal-social needs may be listed in many ways Primarily in the personal sense, most children need an understanding of healthy habits and the application of science to personal and public health. They also need a developing understanding of themselves, an increasing independence in carrying out their decisions and pusposes, a fair balance between success and failure, and a chance to maintain equilibrium and balance at the critical moments. In a more social sense, children need the affection of family and friends, acceptance or status as a member of the group, and social recognition and approval of their personality and actions. These are obviously overlapping needs which may be denied in schools where unsuitable curriculum, overstress on competition, and the teacher's own personality patterns exercise unfavourable influences on development. Children's literature may contribute to these personal, social needs through its content, its organization and methods. Through its contents it may provide a greater understanding of self and of others by presenting fact or fiction about persons with problems similar to those of the reader or his associates. Through its organization children's literature may provide for a gradual development of abilities which ensure success, self-respect, and good opinion of elders and peers. Through its methods the reading material may develop abilities in working with a group, listening carefully to the contributions, of others and abilities in working independently, as in consulting reference material. Thus, the contributions of the reading materials to social personal needs are closely related to its function in relation to children's total adjustments.

Values and Children's Literature

There is a great deal of concern today with the problem of values. Youth in almost every country, is deeply uncertain of value orientation. The world culture, in all its aspects, seems increasingly scientific and relativistic. And the rigid, absolute views on values which come to us from the past appear anachronic Even more important, perhaps, is the fact that the modern individual is assailed from every angle by divergent and contradictory value, claims Rogers, (1971). It is, therefore, very essential to gradually enlighten the children and adolescents on the value system of the modern Indian society through reading material.

Children's books may be looked on as symbols of national culture and they are perhaps more revealing of national ideals, ideas and values than anything else. If the 'liberal-democratic' framework on the one hand, and the 'scientific-technological' framework on the other, are to serve as two major sources of values in the larger social system of India, then the educational system itself must reflect these values in practice and procedure. If we accept the goal of a rational, secular, democratic society

based on modern technology, then rationalism, secularism and equality must find place in the substantive ideas communicated in the process of informal and formal education. Minimally, these ideas must find expression and support in the text-books and other reading material that is given to the children and youth (Gore- *et al*, 1970).

Values have to do not only with behaviour and attitudes within the nation but with the relation of the nation to the rest of the world. Men of world experience who have also held responsible positions in government have written on national integrity, communal harmony, non-violence, arbitration of differences, and blocking of aggression Consultations of their works such as those of Gandhi, Nehru, Radhakrishnan, Tagore and Premchand in the case of India, for example, should be productive of a list of values subscribed to by these outstanding leaders and statesmen

Values are expressed and transmitted through narration and description in the various literary forms For example, there is a story of a man who beat his donkey mercilessly. The donkey could do nothing about this, but he could stand the punishment no longer. So he decided to dress himself up in a tiger skin and frighten his master. This he did. His master was thoroughly frightened. However, his master noticed the donkey's hooves protruding from beneath the pelt In a rage he whisked off the disguise and gave the donkey the beating of his life (Mc Cullough, 1965)

Now, one may include such a story in children's books, saying that it expressed the value that one should not be deceitful, whatever the provocation. Unfortunatelyt however, the story indirectly condones cruelty to animals Should children grow up to think it is all right to torture the animals who bear their burdens and give them sustenance? Many favourite old stories in this manner condone cruelty, killing, cunningness and theft, as means to desirable ends Similarly, some of the old stories portray polygamy, polyandry, casteism, sexism and fatalism without giving slightest indication that the present Indian society does not approve such practices Even in Premchand's story "Bade Ghar ki Beti,, such caste prejudices as : "वे बड़े घर की बेटी है तो हम भी कोई कुर्मी-कहार नहीं हैं" are present It is, therefore, necessary to analyse and edit the classics carefully if the selection of the stories is to support rather than detract from national values and goals.

Themes of Children's Literature

Literature can illumine the social scene and make real for children experiences far distant in time and space Fiction can translate cold facts and figures into human terms Therefore, children's literature can be a very good medium to indirectly give a feeling of the social problems and issues to the children and adolescents. In the nature and types of themes of children's books, therefore, a definite attempt should be made to portray India as an integrated society of multi-religious groups However, saturation of children's books with patriotic, preachy and fatalistic themes should be carefully avoided. Children do not like to read many themes on patriotism, religion, and great men and women (Chaudhari, 1976) Lower grade children enjoy reading animal stories and fairy

and folk tales. Upper grade children are interested in reading stories and poems involving 'wit and humour', adventure and suspense. Growing popularity of "Amar Chitra Katha" series and "Indrajal comics" indicates that they are, to a great extent, fulfilling these needs of the children. Themes on the story of the past (on history) are included in the children's books but little or no effort is being made to present the children with the story of the future. For preparing children to live in a relatively unstable society our emphasis must shift to the future This is desirable for their 'soft landing' in the future. There is an urban bias and male domination in the presentation of the themes of the children's literature. Man is shown victorious while woman a helpless looser or passive spectator The women are generally presented in subordinate roles. This trend is to be reversed to present a balanced picture of both the sexes, and rural and urban environment. Instead of telling children how the majority of our people are living in abject poverty, the writers should highlight the efforts of those intelligent and industrious individuals who have succeeded in overcoming the degrading and demoralizing effect of poverty. Besides, attempts should be made to inculcate active respect and compassion for the weaker, handicapped and backward section of the society (Chaudhari, 1976)

Modern society is based on science and technology Therefore, every child and youth should possess some general knowledge of science. Through children's literature attempt should be made to generate the qualities of scientific attitude, open-mindedness and playing fair with facts and individuals Thus, children's literature can go a long way in giving a balanced view of life by correcting irrationalities engendered in the child's mind through social and other influences (Chakravarti, 1969)

Comics in Children's Literature

Children are found overwhelmingly interested in comics in India "Indrajal comics" and "Amar Chitra Katha" are very much popular The English versions of these comics are also getting popularity in foreign countries. It is, therefore, quite natural for the parents and educators to know about the harmfulness or harmlessness of comic books In our country, perhaps, no study of comic book has been made But, in the United States analysis of the content of a few comic strips and their radio counterparts has been made. Kessel (1943) and Mcintire (1945) have revealed, beyond a doubt, the cheap and false attitudes toward life set forth in the number of the strips they analysed Rowland (1942) analyzing radio programmes based on comic-book themes, revealed an astonishing emphasis upon crime, a disrespect for law, and a tendency for the hero to commit as many crimes in the cause of righteousness as the villain commits in the cause of evil

As to the effect of the comics in general, a great difference of opinion exists. One psychiatric study involving "Superman" and similar comics suggests that they may be useful in special psychiatric cases in offering an imagined security where actual security is lacking in the child's life (Bender, 1944). On the other hand, (Wertham 1948), a senior psychiatrist of New York has produced

evidence of the increasing number of delinquents whose cruel or criminal behaviour is often associated with the reading of comic books.

Wide differences exist among the comics. Humorous productions delight children with their harmless antics Other comics attempt to use the invaluable techniques of the picture strip to tell stories of heroes and events important in the world The classic comics are endeavouring to arouse interest in better stories for exceedingly weak readers. Dora V. Smith (1949) has rightly pointed out that in order to ascertain the impact of comics on children, it is necessay · (1) to find out by actual examination of the comics read by the particular children in question the kinds of experiences they are finding in them; (2) to discover the effect of specific comics upon the individuals concerned, (3) to study the nature of their appeal in order to find better materials which will meet the same needs. Schools will, perhaps, never compete successfully with the comics until they furnish a wealth of better materials of appropriate difficulty suitable for serving as substitute.

Conclusion

The eminent Russian scholar Makarenko (In Sara, 1969) observes that only books which pursue the aim of creating and nurturing an integrated human personality are unquestionably useful for children. This, however, does not mean all phases of human activity and all branches of human knowledge and everything that we need to know, from the amoeba to homosapiens should find a place in the children's books. The most important consideration in selecting themes for children's books is their interest. There should be in a children's books a great deal of energy, laughter, mischievousness—all these are characteristics of children. There is an inherent art in a special sense in literature for children. It consists of simplicity of story, strict logical sequence, and absence of coufusing words. In addition, children's literature should have a special vividness full-blooded colour, completely obvious realism, and exact separation of light and dark. Impressionism is out of place in a children's book The forthright struggle of light and dark, which is in every fairy tale, should also be in every children's book. There is no need of fine psychological play or of detailed analysis. The difference between a children's and adult's book is in style, not in theme—not WHAT the theme is, but HOW the author talks about it.

REFERENCE

1. BENDER, LAURETTA. The Psychology of Children's Reading and the Comics. *Journal of Educational Psychology*, December 1944, XVIII, 227-28.

2. BIERSTEDT, BOBERT. The Writers of Textbooks. In Cronbach Lee J (Ed.)' *Text Materials in Modern Education* Illinois : University of Illinois Press, 1955.

3 CHAKRAVARTI S. Welcome Address at the inaugural function of the first meeting of the National Board of School Textbooks *In Report of the first meeting of the NBST.* New Delhi : NCERT, 1969

4. CHAUDHARI, U. S An Evaluation of Nationalized Hindi Textbooks (Classes I to VIII) of Madhya Pradesh. Ph. D Thesis. Indore : University of Indore, 1976

5. CHAUDHARI, U S. Textbooks and Creativity. *Indian Journal of Education,* May, 1978

6 CHUKOVSKY, K *From Two to Five* Berkeley, Calif : University of California Press, 1963

7. GATES, ARTHUR I. The Nature of the Reading Process. In Henry, Nelson B. (Ed) *Reading in the Elementary School* (The 48th year book of the NSSE, Part II) Illinois: The University of Chicago Press, 1949

8. KESSEL, LAWRENCE. Some Assumptions in Newspaper Comics. *Childhood Education,* April, XIX 349-53.

9. KRISHNAN, H. R Books for children. *School World* Annual Number, 1961

10 McCULLOUGH, CONSTANCE M *Preparation of Textbooks in the Mothertongue* New Delhi : National Institute of Education, 1965

11. RATHS, LOUIS E. *Meeting the Needs of the Children : Creating Trust and Security. Columbus. Ohio :* Charles E. Merril Publishing Co., 1972.

12. ROGERS, CARL R. Towards a Modern Approach to Values : The valuing Process in the Mature Person. In storm, Robert D. (Ed), *Teachers and the Learning Process.* Englewood Cliffs, New Jersey : Prentice Hall, 1971.

13. ROWLAND, HOWARD *Crime and Punishment on the Air.* (Bulletin No. 54). Columbus, Ohio : Evaluation of school Broadcasts, Ohio State University, 1942.

14. RUSSELL, DAVID H. Reading and Child Development. In Henry, Nelson B (Ed.). *Reading in the Elementary School* (The 48th year book of the NSSE). Illinois : The University of Chicago Press, 1949.

15 SARA, LEHRMAN. What is a good children's book? *The Reading Teacher*, October 1969, 23(1), 9-10.

16. SMIRNOVA, VERA About Children and For Children. *Soviet Literature (Special issue for and about children)*, 1968, 12 (246), 163-67

17 SMITH DORA V. Literature and Personal Reading In Henry, Nelson B. (Ed.) *Reading in the Elementary School* (48th year book). Part II of the NSSE. Illinois : The University of Chicago Press, 1949.

18. TORRANCE, E P. Techniques and Materials for Developing Creative Readers In Williams F. E (Ed.), *First Seminar on Productive Thinking in Education* St. Paul, Minnesota : Creativity and National School Projects, Macalester College, 1966.

19. VERMA, MANOHAR (ED.) *Madhumati* (Bal Sahitya Vivechan Visheshank), July-August, 1967.

20. WERTHAM, FREDRIC. The comics........ ....Very Funny. *Saturday Review of Literature*, May 29, 1948 XXXVI, 6-7.

21. WHITEHEAD, A. N. *The Aims of Education and other Essays*. London : Ernest Been Limited, 1962.

22. WOODBERRY, GEORGE E *The Appreciation of Literature* New York : Harcourt & Brace, 1922.

बाल-साहित्य में बालगीतों का महत्व और स्थान

निरकार देव सेवक

पुरातत्व वेत्ताओं का कहना है कि अब से हजारों वर्ष पूर्व मनुष्य ने सबसे पहले जो मृण्मूर्तियाँ बनाई थीं उनमे मनुष्य के शरीर पर पशु-पक्षियो के सिर बने हुए मिलते है। लगता है कि अपने चेहरे की आकृति स्वय बना पाने में उसे कठिनाई होती थी। कुछ-कुछ उसी प्रकार की कठिनाई बच्चो को स्वय अपने लिए साहित्य का सृजन करने मे होती है। इसीलिए जो लिखित बाल-साहित्य हमें समीक्षा और मूल्यांकन करने के लिए उपलब्ध है, वह बडो द्वारा बच्चो के लिए लिखा हुआ ही है।

बाल साहित्य का अर्थ है, वह साहित्य जिसमें बच्चो की रुचि, जिज्ञासा, इच्छा, आकाक्षा, राग-द्वेष, भावना और कल्पना की अभिव्यक्ति हो। बच्चे के मन मे किस वातावरण और किन परिस्थितियो मे किस प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं, इसे समझ पाना बड़ो के लिए आसान नही है। हम यह तो आसानी से समझ सकते है कि हमारे समवयस्क या आयु में कुछ छोटे-बडे मनुष्य किन परिस्थितियो मे कैमा अनुभव करते होगे। स्वय मजदूर और किसान न होते हुए भी कवि मजदूर और किसानो का दु:ख-दर्द अपनी कविता मे व्यक्त करने में सफल हो सकता है, पर बालक का मन इतना चचल होता है कि उसे ठीक-ठीक समझ पाना कभी-कभी असभव हो जाता है। एक छोटी सी कहानी का उदाहरण देकर इसे समझा जा सकता है — बीरबल को एक बार दरबार मे पहुँचने मे काफी देर हो गई। अकबर ने जवाब तलब किया तो बीरबल ने कहा—आज बच्चा कुछ जिद पकड गया और रोने लगा था, उसे मनाने मे इतनी देर लग गई है। अकबर ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा —'बच्चे को मनाने मे इतनी देर ? उसे तो कोई भी चीज देकर चुप किया जा सकता था।' बीरबल ने कहा—'मैं बच्चा बन जाता हूँ आप मुझे मना लीजिए' और वह ऊँ-ऊँ-ऊँ-ऊँ करके रोने बैठ गए। अकबर ने बच्चे की तरह बीरबल को चुप कराते हुए कहा—'बच्चे क्या लोगे? 'बीरबल बोले, 'मै तो गन्ना लूँगा। अकबर ने उन्हें एक गन्ना मँगा कर दे दिया। बीरबल ने फिर रोने का अभिनय करते हुए कहा, 'इसे छील दो।' अकबर ने चाकू से उसे छील दिया। बीरबल फिर भी चुप ना हुए —'इसे काट दो।' अकबर ने गन्ना काटकर उसके छोटे-छोटे टुकडो के ढेर लगा दिए। बीरबल का रोना फिर भी बन्द नही हुआ, तब अकबर ने पूछा, 'अब क्या बात है बच्चे, तुम्हे क्या चाहिए।' बीरबल उसी प्रकार ऊँ - ऊँ करते हुए बोले 'इन्हे जोड दो।' अकबर को मानना पडा कि बच्चो को मनाना कितना कठिन काम है!

बाल-स्वभाव के इस प्रकाश में यदि हम बाल-

साहित्य को देखे तो सोचना पडेगा कि जो बाल-साहित्य हम बच्चो को देते है, उसमे उन्हे कितना सतुष्ट कर पाते है । बाल-साहित्य की समुचित समीक्षा हम उसे बच्चे की दृष्टि से देखकर ही कर सकते है । बच्चों के लिए लिखना तो और भी कठिन काम है । कोई बड़ा जब तक अपने सारे बडप्पन को भुलाकर स्वय बच्चा न बन जाए, बच्चो के लिए लिख ही नही सकता । बच्चो का ससार बडो के ससार से सर्वथा भिन्न होता है । उनका रहन-सहन, आचार-व्यवहार के नियम, रीति-रिवाज, सभ्यता-सस्कृति, वेश-भूषा और भाषा सब कुछ बडो से भिन्न होते है । बच्चे जिस दृष्टि से सूरज, चाँद-तारो, आकाश, बादल, पर्वत, सागर और नदियो को देखते है, बडे उन्हें हजार बार देख चुकने और उनके विषय मे कुछ न कुछ धारणाएँ पहले से बनाए रखने के कारण उसी दृष्टि से नही देख सकते । भक्ति, श्रद्धा, आस्था और विश्वास के जो पर्दे बडों की आँखों पर पडे रहते है, बच्चो की आँखो पर नही होते । फूल और कलियो के सौन्दर्य, पेड-पौधो की हरियाली, चिडियों की चहचहाट, और कुत्ते-बिल्ली के रग-रूप से जो सदेश बच्चो के मन को प्राप्त होते रहते है, वे बडो के मन को नही होते । अनुभव, ज्ञान, आयु और आकार मे बच्चो से कई गुना बडे होकर उनकी तरह धूल में खेलना, शैतानियाँ करना, बात-बात पर मचलना, बालक बन जाना बडो कठिन साधना है । महाभारत मे कुछ ऐसे तपस्वो ऋषियो का उल्लेख मिलता है जो जीते जी अपने शरीर को त्याग कर किसी दूसरे के शरीर मे प्रवेश कर जाया करते थे । बड़े होकर बच्चा बन जाना भी कुछ-कुछ वैसी ही बात है ।

बाल-साहित्य के मूल्यॉकन का कार्य भी बच्चे स्वयं जितनी अच्छी तरह कर सकते है. बड़े नही । उसके मूल्यॉकन की कठिनाई ही यह है कि हम बडे अपने बच्चों को किन्ही पूर्व निश्चित आदर्शों के साँचे मे ढालकर देखना चाहते है । विगत द्वितीय विश्व युद्ध से पहले जर्मनी, जापान और इटली मे इसके लिए बहुत बडे पैमाने पर प्रयास किए गए थे । रूस, चीन आदि देशो मे अब भी यह प्रयास किए जा रहे है । ससार के अन्य अनेक देश भी इस प्रकार के प्रयासो से विमुख नही है । हमारे बच्चे हमारी अपनी धारणा के अनुसार देश की विशेष परंपराओ के अनुरूप श्रेष्ठ नागरिक बने, वे हमारे धर्म के अनुयायी हो, वे उसी प्रकार का आचरण व्यवहार करे, जैसा हम चाहते हैं । अपने इस चाहने के आवेश मे हम उन्हे स्वाभाविक मानवीय रूप से विकसित होने की स्वतन्त्रता भी नही देना चाहते । बर्नार्ड शॉ ने ऐसे ही लोगो के विषय में कहा था कि सबसे नृशस गर्भपात करने वाला वह व्यक्ति है जो बच्चे के चरित्र को किसी साँचे में ढाल देना चाहता है । ये सब बातें शिक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत उचित ठहराई जा सकती है, पर साहित्य का क्षेत्र उससे कही अधिक व्यापक और विस्तृत है । उसमे तो वह सब कुछ समा सकता है जो बच्चे सोच, समझ या कल्पना कर सकते है । बाल-साहित्य को शिक्षा के उद्देश्य से सम्बद्ध कर देने मे बडा और कोई अन्याय बाल-साहित्य के प्रति नहीं हो सकता । जब बड़ो के लिए लिखे गये साहित्य पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नही है कि वह किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही लिखा जाए तो बाल-साहित्य पर ही ऐसा प्रतिबन्ध क्यो हो ?

बालगीत बाल-साहित्य का एक अभिन्न अग है । बडो की भाषा मे जिसे कविता कहा जाता है उसे ही बच्चो की भाषा में बालगीत । अत्यन्त प्राचीन काल मे, जब से मानव समाज में कविता किसी न किसी रूप मे रची और सुनी जाती रही है, बालगीत भी रचे और सुने जाते रहे होगे । उनकी कोई सचित निधि हमारे पास नही है । बडो के साहित्य मे कविता के क्रमबद्ध इतिहास की तरह बालगीतो का कोई इतिहास हमे नही मिलता, पर हम इतिहास मे ऐसे किसी काल की कल्पना नही कर सकते जबकि कुछ न कुछ बालगीत किसी न किसी रूप में बच्चों को उपलब्ध न रहे हों ।

कुछ लोगों का विचार है कि आधुनिक वैज्ञा-

निक उन्नति के युग मे मानव-समाज मे कविता के लिए कोई स्थान नही है। उसकी प्रेरणा के मूलस्रोत सूखते जा रहे है। विज्ञान बुद्धि और तर्क जनित है। कविता की उत्पत्ति भावुकता से होती है। हमारा जीवन दिन-प्रतिदिन बुद्धि और तर्क से संचालित होता जा रहा है, इसलिए कविता का भविष्य अधकारमय है।

पर वास्तव मे बात ऐसी नही है। विज्ञान वस्तु-जगत के सत्यो को उजागर करके सामने लाता है। वह बताता है कि जिन फूलो के रग-रूप पर कवि युग-युग से मुग्ध होते आए है केवल वही सत्य नही है। बल्कि उनमे 'वर्ण सकरता' उत्पन्न करके विविध रग-रूप के फूल खिलाए जा सकते है, वह भी सत्य है। जो कवि पहले प्रकार के फूलो के मोहपाश से मुक्त नही हो पाते, वे दूसरे प्रकार के फूलो के रग-रूप के प्रति आकर्षित होने मे असमर्थ रहते है और कविता के भविष्य को अधकारमय समझने लगते है, पर जो कवि वैज्ञानिक खोजो की उपलब्धियो से नित्य नए धरातल और आकाश पर विचरण करने की क्षमता रखते है, उन पर गर्व करते है, उन्हें सर्वत्र ज्ञान के प्रकाश की किरणे फूटती हुई दिखाई देती है और कविता का भविष्य उज्जवलमय प्रतीत होता है।

विज्ञान और कविता दोनो का जन्म मनुष्य की एक ही मूल प्रवृत्ति 'स्वतन्त्रता' मे हुआ था। विज्ञान उसी से प्रेरित होकर बाह्य जगत के सत्य की खोज में लग गया और कविता नित नए भावनालोक के निर्माण का काम करने लगी। दोनों अपने-अपने विकास के लिए एक-दूसरे पर आश्रित है। कविता वह भाव-भूमि तैयार करती है जिस पर विज्ञान सत्य की खोज करता है और विज्ञान जिस सत्य की खोज कर चुका होता है, कविता उसी को आधार बनाकर नई भाव-भूमि की तैयारी करती है। विश्व के महान क्रान्तिकारी नेता लेनिन ने इसी बात को ध्यान मे रखकर कहा था—Poets are the Engineers of human soul. अर्थात कवि मनुष्य की आत्मा के इंजीनियर होते है, इसलिए जब तक मनुष्य मे स्वतंत्र रहने की स्वाभाविक इच्छा विद्यमान है, विज्ञान कितनी भी उन्नति कर ले, कविता का ह्रास नही हो सकता। विज्ञान जितने ही सत्यो को सामने लाता जाएगा कविता उतने ही भावनालोकों का निर्माण करती जाएगी।

लयबद्धता कविता की एक ऐसी विशेषता है कि जिसे अलग कर देने पर वह गद्य का रूप धारण कर लेती है। उसकी यह लयबद्धता सृष्टि की लयबद्धता से भिन्न नही होती है। सृष्टि मे हम जो कुछ देखते है वह गतिशील होने के साथ-साथ नियम से बद्ध है। इसी को उसकी लयबद्धता कहा जा सकता है। मनुष्य की उत्पत्ति सृष्टि की इसी नियम-क्रमबद्धता से होती है। इसीलिए बच्चो को बडो की अपेक्षा सृष्टि या प्रकृति के अधिक निकट या दूसरे शब्दो मे भगवान का रूप कहा जाता है। बडा होने पर वह कभी-कभी सृष्टि की नियम-क्रमबद्धता से विमुख होकर उसकी उपेक्षा करता हुआ दिखाई देता है पर बचपन मे या बडे होकर भी यदि वह उस नियम-क्रमबद्धता से जुडा हुआ न रहे तो उसका अस्तित्व ही खतरे मे पड सकता है। मनुष्य द्वारा निर्मित समाज सगठनो मे चाहे वह राज्य हो, समाज या परिवार, उसी नियम-क्रमबद्धता से व्यवस्था आती है।

कविता की लयबद्धता सृष्टि की नियम क्रम-बद्धता के अनुरूप होने के कारण जिन बच्चों को बचपन में ही शिशुगीत दे दिए जाते है, वे तन-मन से स्वस्थ रहते है। वे अपना मानसिक सतुलन बनाए रखने के अभ्यस्त हो जाते है और आगे भी अपने जीवन को अनुशासित और व्यवस्थित बनाए रखने मे सफल हो सकते है। पॉल हैज़ार्ड ने अपनी पुस्तक 'बुक्स' चाइल्ड एण्ड मैन' में इसी बात को अंग्रेजी बालगीतों की चर्चा करते हुए कहा है—How strange those Nurscry Rhythm appear to Latin Minds They seem to spring from the very depth of the Nation's soul......They are not unconscious of the fact that they

are placing rhythm at the beginning of life: they are confronting to the general order of the universe'

लैटिन लोगो को 'नर्सरी राइम्स' कैसी कौतूहलवर्धक लगती है। यह जातीय भावना की बिल्कुल गहराई से प्रस्फुटित होती है। वे लोग इस बात से अनभिज्ञ नहीं है कि लय को वे जीवन के प्रारम्भ मे रख रहे है, सृष्टि की नियम-क्रमबद्धता का सामना कर रहे है।

किसी विद्वान का कथन है—A child's mind is a great blooming buzzing confusion 'बच्चे का मस्तिष्क एक गूँजती हुई भिन-भिनाहट की उथल-पुथल होता है'। यह बात बहुत छोटी आयु के बच्चों के लिए कही गई है। परन्तु उनके लिए भी कही जा सकती है जो स्वभाव से बहुत ही अधिक चचल और नटखट होते है। वह थोड़ी देर के लिए भी किसी विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित नही कर पाते। ऐसे बच्चों को जब कविता की लयबद्धता आकर्षित कर लेती है तो वे चित्त को एकाग्र करना सीख जाते हैं। उनमे विचार-शक्ति या विवेक का उदय होने लगता है। कमरे में खूँटी पर टँगे ओवरकोट को भूत समझ लेने का भय उनके मन से निकल जाता है। वे घोडे मे सूँडवाले हाथी की कल्पना करने के बजाय घोड़े को घोडा और हाथी को हाथी समझने लगते है।

भाषा-ज्ञान से रहित बच्चो को लोरियाँ सुनाने की प्रथा ससार के सब देशों मे अत्यन्त प्राचीन काल से रही है। उनकी परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी स्वयं माँ है। श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके विषय मे कहा था—'कोन कालेर आलोतें प्रथम फुटलो सूर उठ लो, तो जानबार कोनो उपाय नेई।' माँ की ममता से अपने आप फूट पडी ये लोरियाँ दुनियाँ के सबसे मीठे गीत है। शिशु के मस्तिष्क मे गूँजती हुई भिनभिनाहट की उथल-पुथल को शाँत करने का काम सबसे पहले लोरियों से ही प्रारम्भ हो जाता है।

बच्चे के स्वतत्र व्यक्तित्व को हमारे समाज में प्राय मान्यता नही मिल पाती। उसे अनजान समझ कर उस पर सारा ज्ञान आरोपित करने की चेष्टा की जाती है। पर वास्तविकता यह है कि प्रत्येक बच्चे का अपना एक अलग व्यक्तित्व होता है और वह उसे अपनी तरह से विकसित करना चाहता है, उसी से उसका चरित्र बनता है और उसके निर्माण मे बालगीत बहुत सहायक होते हैं। अपनी नासमझी के कारण बच्चा प्राय असंभव कार्य कर डालने का प्रयत्न करता है। सफलता प्राप्त करके उसे प्रसन्नता होती है और असफल होने पर उसे स्वय अपने ऊपर क्रोध आता है जिससे वह अपना कुछ भी अहित कर सकता है। बालगीत उस क्रोध से उसकी सुरक्षा करते है। अग्रेजी का एक बहुत प्रसिद्ध बालगीत है—

Jack and Jill went up the hill
To fetch a pail of water
Jack fell down and broke his crown
and Jill came tumbling after

बडों के लिए इस बालगीत का कोई विशेष अर्थ नही है, पर बच्चे की आशा-निराशा की भावनाओं का बडा सजीव चित्रण इसमे है। दो बच्चो के पहाड़ी पर पानी लेने जाने की बात सुनकर बच्चे के मन मे उत्साह का सचार होता है और फिर लुढकते-पुढकते नीचे गिरने की बात से उनको असफलता पर क्रोध के बजाय हँसी आती है। इस प्रकार अपनी असफलता से निराश होने की बात उनके मन से निकल जाती है और वे उसे भी सीढी बनाकर ऊँचे चढ़ने मे सफल होते हैं। वे अपने व्यक्तित्व का विकास स्वय कर लेते हैं। इस प्रकार के बालगीत जिन बच्चों को बचपन मे नहीं दिए जाते उनकी दुर्दशा का अनुभव मुझे बच्चों के एक समारोह मे हुआ था। उसमें बच्चो ने कविताएँ सुनाई थीं। उनके विषय 'कश्मीर-समस्या', 'देश की गरीबी' या ऐसे ही कुछ थे। मुझे उन नन्हे-मुन्ने बच्चो के मुख से इतनी गम्भीर

रचनाएँ, जिनमें उनकी अपनी कोई बात नहीं, सुनकर ऐसा लगा था कि इनके हाथ-पाँव तो छोटे रह गए पर सिर हाथी के सिर के बराबर हो गए। मैंने उनके अभिभावको से कहा था कि यदि इन बच्चो को अच्छे-अच्छे बालगीत पढने को दिए गए होते तो इनका विकास इस बेढगेपन से न होता और ये इतने बेडोल दिखाई न देते।

बच्चो को भाषा-ज्ञान कराने की दृष्टि से भी बालगीत बडे उपयोगी होते है। बहुत छोटे बच्चो के लिए शब्द भी खिलौनो की तरह होते हैं। बच्चे ध्वनि मात्र से उनके प्रति आकर्षित होकर उन्हे उच्चारित करते हुए खेलने मे आनन्द लेते है। उन शब्दो का कोई निश्चित अर्थ न हो तो भी उनके खेल में कोई अन्तर नही पडता। इसीलिए अर्थहीन तुकबन्दियाँ प्रत्येक देश के बाल-साहित्य मे पाई जाती है। अर्थहीन गद्य नही लिखा जा सकता और लिखा भी जाए तो बच्चे उससे अर्थहीन तुकबन्दियो की तरह अपना मनोरजन नही कर सकते। इसके अतिरिक्त गीतो मे शब्दो का प्रयोग जिस ढग से होता है, उसके कारण उनमे एक गूँज आ जाती है और वह गद्य की भाषा मे प्रयुक्त शब्दो से कही अधिक अर्थपूर्ण हो जाते है।

बालगीत बच्चो के लिए एक प्रकार के दर्पण का काम करते है। उन्हे उनमे अपनी भावनाएँ प्रतिबिम्बित दिखाई देती है। वह उनमे अपनी भावनाओ को देखकर उनका परिष्कार कर सकते है, जैसे कोई दर्पण में देखकर अपने बाल संवार लेता है।

बाल-साहित्य की अन्य विधाओ—कहानी, उपन्यास, नाटक आदि के मूल्याकन की कसौटी भी बालगीतो के मूल्याकन की कसौटी से भिन्न नही हो सकती। उनका मूल्याकन भी उन्हे बच्चो की दृष्टि से देखकर ही किया जा सकता है। किसी कहानी, उपन्यास या नाटक मे यदि बच्चो की अपनी भावनाएँ और अनुभव तथा ज्ञान प्रतिबिम्बित नही होते तो बच्चों के लिए उनका कोई महत्व नहीं है।

बच्चों के लिए कहानियाँ लिखने की परम्परा हमारे समाज में लोरियो की तरह काफी पुरानी है। पचतत्र और ईसा की कहानियो जैसी लोकप्रियता तो संसार का एक भी बालगीत अभी तक अर्जित नही कर सका पर इससे बालगीतों का महत्व कम नही होता। बालगीतों के विश्व मे प्रसिद्ध होने मे सबसे बडी कठिनाई ही यह है कि एक भाषा में लिखा बालगीत दूसरी भाषा मे अपनी सपूर्ण भावना और अभिव्यक्ति के सौन्दर्य को लिए हुए रूपान्तरित नही हो सकता है। अपनी भाषा के सीमित क्षेत्र मे वह किसी भी कहानी से अधिक लोकप्रिय हो सकता है।

कहानी-लेखक के मन मे यह भाव कही न कही अवश्य छिपा रहता है कि वह बच्चो के लिए कहानी लिख रहा है, इसीलिए अत्यन्त प्राचीन काल से कहानियो के साथ सुनाने वाली दादी, नानी का सबंध जुड़ा हुआ मिलता है। कहानी की रचना-प्रक्रिया भी कुछ इस प्रकार की है कि कोई बडा ही उसके विभिन्न अवयवो-कथानक, घटना, पात्र, सवाद आदि का समायोजन करके उसकी रचना कर सकता है। बच्चे प्राय उन्हे योजनाबद्ध कहानी का रूप देने मे असमर्थ होते है।

कहानियो मे बच्चो की सरल, स्वाभाविक अनुभूतियो की ही अभिव्यक्ति नही होती। उनमे बच्चो के अनुभव और ज्ञान की भी बहुत सी बाते कही जाती हैं। हम ससार मे सर्वाधिक लोकप्रिय पचतत्र और ईसा की कहानियो को ही ले तो उनमे कोई न कोई शिक्षा या ज्ञान की बात अवश्य मिलेगी। इससे उनकी सौद्देश्यता स्वयं प्रकट हो जाती है। बच्चे स्वय अपने लिए कोई ऐसा उद्देश्य या आदर्श निश्चित नही कर सकते। यह बात ऐसी ही है, जैसे ससार के कुछ देशों में एक निश्चित उद्देश्य से, एक निश्चित प्रकार का साहित्य ही लिखने का नियम है। स्वतत्र देशो मे इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नही होता। इसलिए बच्चो को अपने अनुभव-ज्ञान के आधार पर उनका सीधा सबध जीवन और जगत से जोड़ने वाली कहानियाँ सफलतापूर्वक लिखी जा सकती है। हमारा देश भी उनमे से एक है। हम

बड़े जब अपने लिए लिखी जाने वाले साहित्य पर सौद्देश्यता का कोई अंकुश लगा हुआ नही देखना चाहते तो बच्चे जो स्वभाव से ही अधिक स्वतन्त्रता-प्रिय होते है, इस प्रकार का कोई अंकुश कैसे पसन्द कर सकते है ? यह दूसरी बात है कि हम अपनी चतुराई से उन्हे वह पसन्द कराते रहे।

बच्चों को अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए जैसा खुला वातावरण बालगीत-साहित्य मे मिलता है वैसा बाल-साहित्य की किसी अन्य विधा के साहित्य में नही।

बालशिक्षा में कठपुतलियों का महत्व

डा० महेन्द्र भानावत

भारत मे कठपुतलियाँ लोक-शिक्षण का बडा प्रभावशाली माध्यम रही है। बाल-शिक्षण मे भी इनका महत्व अप्रत्यक्ष रूप मे बडा प्रभावी रहा है पर हमारे मन-मस्तिष्क ने उनके इस रूप को कभी दृष्टि-केन्द्रित नही किया। कठपुतलियो द्वारा समाज-शिक्षण तथा हमारी पुरातन सस्कृति के लोकरजक रूप को स्वस्थ वातायन मिला है। लोकानुरजन का कोई अन्य रूप ऐसा नही देखा गया जिसने कठपुतली जैसी बेजान चीज के माध्यम से हमारी सस्कृति के देश-काल-भाव लोक को एक साथ उजागर किया हो। भारतीय कठपुतलियो के शैक्षणिक पक्ष को हमने तब तक नही पहचाना जब तक कि हमारे कुछ कठपुतली विशेषज्ञ यूरोप के विविध देशो मे होने वाले कठपुतली प्रयोगों को देखकर नही आए। यूरोप और अमरीका मे कठपुतली अब केवल मनोरजन का साधन ही नही रही, उसका उपयोग विविध शैक्षणिक स्तरो मे भी होने लगा है।

यूरोप मे आज से कोई तीन सौ वर्ष पूर्व विशेषकर इटली, इग्लैड और जर्मनी मे पुतलियो के जो प्रयोग हुए हैं उनमे पुतलियाँ केवल मनोरंजन का साधन मात्र थी। हमारे यहाँ भी आंध्र की छाया-पुतलियो तथा राजस्थान, उडीसा, तजोर की सूत्र-पुतलियो के माध्यम से ऐतिहासिक एव धार्मिक महापुरुषो के जीवन-चरित्रो को मनोरंजक रूप मे ही प्रदर्शित किया गया। सर्वप्रथम इग्लैड मे बाल-शिक्षा के क्षेत्र में कठपुतलियो का प्रवेश हुआ। यह बात कोई 25 वर्ष पूर्व की है। इसका श्रेय लदन के प्रख्यात पुतली प्रयोगी, शिक्षाविद् श्री 'फिलपोट' तथा 'जार्ज स्पिएट' को है। इटली की श्रीमती 'सिग्नोरली' ने भी इस क्षेत्र मे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है।

इधर अमरीका मे डा० 'मार्जरी मेक फेलरल' ने भी पुतलियो को लेकर बाल-शिक्षण की दृष्टि से अच्छे प्रयोग किए है। रुमानिया, चेकोस्लोवाकिया, हँगरी, ग्रीस, रूस आदि देशो मे अन्य कलाओ की भाँति पुतलियाँ भी एक स्वतत्र कला के रूप मे स्वीकार की गई। कला की अन्य रगमचीय विधाओ के अनुरूप ही पुतलियो की एक समृद्ध रगमचीय विधा विकसित हुई और उसमे अच्छे नाट्य की रचनाओ का प्रस्तुतीकरण किया गया। फलस्वरूप, कठपुतलियो का एक स्वतत्र शास्त्र विकसित हुआ और उसके विशिष्ट नाट्य शिल्प की बारीकियो पर खोज-शोध की जाने लगी। इन देशो में विज्ञापन के रूप मे भी कठपुतलियो का उपयोग किया गया। पूर्वी जर्मनी, और रूस के कुछ स्कूलों में वहाँ के शिक्षा शास्त्रियो ने बाल शिक्षण मे पुतलियो का प्रयोग हस्तकौशल के रूप में किया जिसका परिणाम बड़ा प्रभावी रहा।

कुछ बालपुतली विशेषज्ञों ने बच्चो की रुचि के अनुकूल पशुपक्षियो और परियों की कहानियो के आधार पर कुछ ऐसी प्रभावना दी जिससे बच्चो पर अच्छे सस्कार पड़ सके और वे अपने को उसी के अनुसार ढाल सके। कुछ स्कूलो मे बच्चों द्वारा कठपुतलियाँ बनाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। स्वय बच्चो से कहानी पाठ कराया गया। इस प्रकार बच्चो की अभिरुचि जब इन पुतली-प्रयोगो की ओर बढने लगी तो इस कार्य ने तेजी पाई। धीरे-धीरे पूर्व के सभी स्कूलो मे 'पुतली' बच्चो की शिक्षा का प्रबल माध्यम बन गई। इग्लैड के श्री 'फिलपोट' और श्रीमती 'वायलेटा' शैक्षिक पुतलियो के क्षेत्र में विश्व के कर्णधार माने जाते है। कठपुतली जगत में यह दम्पत्ति 'पेम्टोपक' के नाम से विख्यात है। इन्होने 'ब्रिटिश एजूकेशनल पपेट एसोसिएशन' तथा 'पपेट्री गिल्ड' नाम से शैक्षणिक पुतलियो के सगठन स्थापित किए जिनके माध्यम से बालशिक्षण पर बडे अनुसधान-प्रयोग हो रहे है।

पूर्वी बर्लिन की श्रीमती 'एलिजाबेथ शूल्ज' बालपुतलियों की विश्व विख्यात मर्मज्ञा हैं। ये अपनी बहिन के साथ मिलकर तीन से छह वर्ष तक के बच्चो के लिए पुतलियो का प्रभाव-प्रयोग करती है। मुख्यत: ये दस्ताना पुतलियाँ चलाती है। जर्मनी के सभी ऐसे स्कूलो मे इनके कार्यानुभव शिक्षा-विभाग द्वारा मान्य है। 'शूल्ज' की पुतलियाँ बच्चो की रग-रग मे बस गई है। ये पुतलियाँ खेल-खेल में बच्चो को शुद्ध उच्चारण कराने से लेकर पाठ पढ़ाने, गाने-नाचने, कपडे पहनने, बटन लगाने, नाखून साफ करने, दातुन करने जैसी क्रियाएँ सहज मे ही सिखा देती हैं। लदन मे 'लिटिल एन्जिल थियेटर' एक मात्र बच्चो का पुतली-प्रदर्शन-गृह है। यहाँ के संचालक 'जोहनराइट' है। ये अपने थियेटर मे प्रतिदिन तीन प्रदर्शन बच्चो के लिए आयोजित करते है। इटली के एक्विला मे 'पपेट्री स्टेबाइल डेल एक्विला' नामक पुतलियो की एक प्रमुख सस्था है, जिसमे कठपुतली थियेटर के साथ-साथ कठपुतली-संग्रहालय भी है। इसी सस्थान के साथ बच्चो का एक विचित्र स्कूल चलता है जहाँ के पाठ्यक्रम मे पुतलियो का ही प्राधान्य है। यहाँ पुतलियां के माध्यम से ही बच्चो को चित्रकारी, दस्तकारी के अतिरिक्त सिलाई, बुनाई, सगीत, नृत्य, इतिहास, गणित, विज्ञान, भाषा जैसे विषय पढाए जाते है। समग्र विश्व मे सभवत: यही एक ऐसा सस्थान है जहाँ कठपुतलियो के माध्यम से बालशिक्षण मे ऐसे अनोखे और उन्नत प्रयोग देखने को मिलते है।

फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैड, रूस, चेकोस्लोवाकिया आदि देशो मे तो पुतलियो का एक और प्रयोग दृष्टव्य है। वह है—'बाल मानस रोगियो का उपचार।' स्वस्थ शिक्षण के लिए यह आवश्यक है कि बच्चा शारीरिक तथा मानसिक दोनों दृष्टियो से पूर्ण स्वस्थ हो। बच्चों की विविध समस्याओ को समझने और उनका निराकरण करने मे भी पुतलियाँ बडी प्रभावी सिद्ध हुई है। समस्या-बालको को लेकर पुतलियों ने बड़े अच्छे परिणाम दिए है। ये सभी विशेषताएँ मूल रूप में हमारी भारतीय पुतलियो मे भी विद्यमान है। क्योंकि हमारी दृष्टि कभी इस ओर गई ही नही इसलिए हमे कभी वह पल और फल भी हाथ नही लगा जिसे विदेशो मे देखकर हम चमत्कृत होते है।

विश्व में कठपुतलियो की देन भारतवर्ष की है। यहाँ इसका इतिहास सैंकड़ो वर्ष पुराना है। भारतीय सस्कृति और विविध सस्कारो के फलस्वरूप पुतलियो की जो विविध शैलियाँ यहाँ प्रचलित रही उनमे यहाँ की आचलिक गध-सुगध, लोकचारित्रिक गाथा-कथाओ का गुँथन-गुँजन ही प्रधान है। बुखारेस्ट, रुमानिया के अन्तर्राष्ट्रीय कठपुतली समारोहो मे भाग लेने वाले विश्व कठपुतली मर्मज्ञों को अंततः मानना पड़ा कि भारत ही इस कला का मूल स्थान है और भारत मे भी सूत्र-पुतलियो की जन्म-स्थली होने का गौरव राजस्थान को है।

राजस्थान मे कठपुतलियो के उद्भव के जो विविध किस्से प्रचलित रहे है उनके मूल मे भी बाल

लोकानुरंजन और उससे जुड़े लोकशिक्षण के ही उत्स दृष्टिगोचर होते है । एक बहुत पुराना किस्सा है, तब का जब कि पृथ्वी पर दैवी शक्तियों का बाहुल्य था । मृत्युलोक की सैर सपाटे के लिए देवता गण अपने वाहनो पर बैठ कर आया करते थे । शिव और पार्वती भी आए । घूमते-घूमते उन्होंने रात को एक बढई को अपने मुँह बोलते अबोले खिलौने के सम्मुख उदास परेशान पाकर किसी आविष्कारक भूमिका मे खोया देखा । बढ़ई सेवाराम की सानी नही थी । अपने खिलौनो की कलात्मक कारीगरी मे वह रह-रहकर एक ही चीज चाहता था कि यदि उसके इन खिलौनो मे कोई चहक डाल दे—तो ये चहचहाने लग जाएँ । वह इसी उधेड बुन में घण्टो बैठा रहता था और उनके निर्जीव मन प्राणो मे सजीवनी-सजीवता के सुखद स्वप्न सजोए रहता ।

पार्वती को सेवाराम की इस भूत-अभूत साधना पर दया आ गई । उसने हठ पकड ली और शिवजी से कह दिया कि अब आप सेवाराम की इच्छा पूर्ण करेगे तभी हम यहा से प्रस्थान करेंगे अन्यथा नही । शिवजी ने सेवाराम को उसका मनचाहा मेवा दे दिया । सारी पुतलियाँ जीवित हो चहचहाने लग गई । अचानक यह चमत्कार देखकर वह फूला नही समाया और बेसुध हो अपनी पुतलियों पर लपक पडा: पर ज्योंही उसने पुतलियाँ छुई, वे फिर निर्जीव हो गई । तब आकाशवाणी हुई कि अब इनमे ऐसा जीव नही आ सकता । अब यदि चाहो तो केवल धागे द्वारा तुम इनमे प्राण-प्रतिष्ठा कर सकते हो । उसने यही किया और मन की समग्र मुराद को साक्षात रूप दिया ।

सूत्र-पुतलियो का यही सूत्र नाटक के मूल भावो का उत्स भी समझा जाता है । सेवाराम की पुतलियो का यह सारा रहस्य-ससार दैवी शक्ति का चमत्कार माना गया । फलत वे पुतलियाँ भी उसके लिए विशिष्ट वरदान-वाहक बनी । आगे चलकर भाट पुतली को देवी के रूप में अपने कुल की अधिष्ठात्री मान बैठा । इस 'मान बैठने' के पीछे जो सन्स्कारिक विधि सम्पन्न की जाती है वह भी बडी विचित्र है। पुतली नचाने के पूर्व वह उसकी विधिवत पूजा करता है । पूरी बिरादरी को न्योतता है। योगमाया का ध्यान कर बकरे की बलि देता है। उसके रक्त से पुतली का टीका करता है । तब भाट प्रतिज्ञा करता है कि 'हे पुतली मैया, जोगमाया ममध्या मावलियाँ! मै तेरी नित्य पूजा करता रहूँगा 'तू मुझे रोजी-रोटी देती रहना और देश-परदेश मे आए खतरों से बचाती रहना ।' सेवाराम के खिलौने से लेकर पुतलियों मे परमेश्वर का रूप-दर्शन हमारे इतिहास, जीवन और धर्म-सस्कारो की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे बाल-शिक्षण की समग्र सन्निधियो के सूत्र पिरोए हुए मिलते है।

इन पुतलियो की पीठिका से एक और महत्व-पूर्ण सूत्र की पहचान भी हाथ लगती है जो कठ-पुतलियो की बाल-सुलभ मनोवृत्ति के शैक्षणिक पथ को उद्घाटित करती है। यह है 'पुतली का ललुआ प्रकार' जिसमे हाथ की पाँचो ऊँगलियाँ और हथेली मिलकर पुतली के एक ललुए को असली ललुए का भ्रम प्रदान करती है। इसमे ललुआ अर्थात् बच्चे की शक्ल का एक काठ लघु चेहरा बीच की अगुली मे बैठा दिया जाता है। अगुली के पास की दोनो अगुलियो मे ललुआ के दोनो हाथ तथा अगूठे और अतिम अगुली मे उसके दोनो पाँव बैठा दिए जाते है और बीच हथेली मे एक रगीन गुदगुदा सा कपडा डालकर एक सम्पूर्ण बच्चे का भ्रम दिया जाता है। पाँचो अगुलियो का हिलना-चलना कुछ इस प्रकार दिखाया जाता है कि हथेली मे लेटा हुआ बच्चा अपनी सहज स्वाभाविक क्रिया में हाथ-पाँव मारता परि-लक्षित होता है।

कठपुतली भाट कठपुतली चलाने से पूर्व अपने ललुओ (बच्चों) को इस ललुए के माध्यम से ही पुतली चलाने का अभ्यास कराते है और जब उनकी पाँचो अगुलियो उन्हे चलाने, विविध हाव भाव दिखाने, कभी उसके रोने, कभी हँसने, कभी रूठने, कभी खिलखिलाने-मचलने के हाव-भाव व्यक्त करने

में कुशल हो जाती है तब वह उन अंगुलियों मे पुतलियो के धागे अर्थात् धागे वाली पुतलियाँ देता है। कुछ वर्षो पूर्व भँगनिये साधु ललुए का प्रदर्शन कर घर-घर, गाँव गाँव घूमते अपना पेट पालने का धधा करते थे। बच्चो की एक खासा भीड उनके पीछे जमा होकर इस कौतुक को देख फूली नही समाती थी।

बच्चे निष्क्रिय नहीं बैठ सकते। वे निरन्तर अपने आपको अभिव्यक्त करना चाहते है। कोई न कोई नया सृजन चाहते हैं। उनके आनन्द की अनुभूति अपने में अलग ही है। गुड्डे-गुड्डी का खेल, घरोंदे तैयार करना और इसी प्रकार के कुछ अनुरजन-साधनो को जुटाकर वे अपनी भावनाओ का परिष्कार करते है, मन को केन्द्रित करते है और तन को डुबाए रखकर अपनी लगन-पुरुषार्थ और नैरन्तर्य-जिजीविषा को बनाए रखते है। पुतली एक ऐसा माध्यम है जो हर दृष्टि से उनके सर्वागीण बिकास मे सहायक हो सकती है। बल्कि यहाँ तक कहा जा सकता है कि यदि सुनियोजित ढग से पुतलियो द्वारा बच्चो का शिक्षण हो तो समस्यामूलक बच्चे नजर ही न आएँ।

कठपुतली केवल 'कठपुतली' ही नही है—वह कई कलाओं का, कई उद्योग व्यवसायो का और कई कार्यानुभवो का सुखद सम्मिलित प्रयास है। कठपुतली बनाने वाला एक दस्तकार ही नही जो दस्तकारी की चीजे बनाकर रख देता है। वह मात्र मूर्तिकार भी नही जो अपनी मूर्ति को बना बनाया नख-शिख देता है। उसे केवल चित्रकार भी नही कहा जा सकता। किसी चित्र को उकेरता हुआ उन्हे विविध रगो मे रंगता है। वह सब कुछ है—वह दस्तकार भी है, शिल्पकार भी। चित्रकार भी और एक स्वप्नदृष्टा कलाकार भी। कठपुतलियो का ससार वह नही जो हम रात दिन देखते है। यह एक ऐसा विचित्र और अजूबा ससार है जहाँ असाधारण को अति साधारण और असंभव को सरल सभव कर दिखाना होता है। यह एक कठपुतली निर्माता ही कर सकता है। वह शेरो के साथ शेर बन खेलता है। हिरणो के साथ चौकडियाँ भरता है। हाथी के साथ साथी का धर्म निभाता है। चिड़ियो के साथ चहलकदमी करता है। परियों के साथ नदी, नाले, पहाड नापता है और राक्षसो, भूत-प्रेतो को खबरदारी के साथ मच पर प्रस्तुत करता है। यहाँ पहाड़ बोलते है। मक्खी, मच्छर, बिल्ली, घोडे सबके साथ मिलकर एक अजीब ससार की रचना होती है। इस रचना का आनन्द विशेष समझ, सूझबूझ और स्वस्थ सुलझा मन ही ले सकता है। पुतली का सर्जक ऐसे कई गुणो का धारक होता है। जहाँ सकीर्ण, रोगग्रस्त, कुठित, समस्यामूलक, अविवेकी, झगडालू और नाना-उलझनो में ग्रस्त व्यक्ति सफल पुतलीकार नही बन सकता वहाँ अपने में कई गुणोवाला मनोवैज्ञानिक पुतलीकार अपने पुतली प्रयोगो से इन दुर्गुणधारी व्यक्तियो को इन सारे झझटो से मुक्त कर सकता है।

पुतलियो का अपना ससार विचित्र होने से उनकी बनावट भी विचित्रता लिए होती है। । पुतलियो का नाट्य तत्र मानवीय नाट्य की तरह नहीं होता। रगमच पर मानवीय नाट्य मे मनुष्य कोहूबहू वही बनना पडता है जिसका अभिनय उसे करना है। परन्तु पुतली का शास्त्र इससे भिन्न होता है। इसमे हूबहू अनुकृति नही होती। ऐसा न होने पर भी होने का एहसास दे देती है। और यही भ्रममूलक शिल्प पुतलियो की सबसे बड़ी विशेषता है। यही उनका सबसे बडा गुण, धर्म और सबसे बड़ी तासीर है। इनमे दर्शको की कल्पना की भागीदारी की माँग रहती है। यों भी पुतली अपने आप मे कुछ नही होती, उसे चलाने वाला चालक ही उसकी प्राणदायिनी शक्ति है।

दर्शक अपनी-अपनी कल्पना को पुतलियो के साथ समन्वित कर सकें इसलिए पुतलियो मे पूर्णांगी होने का अभाव दर्शाया जाता है। बच्चे बड़ो की अपेक्षा अधिक कल्पनाजीवी, सौन्दर्यजीवी, और भावनाजीवी होते है। किसी पुतली का केवल धड़

होता है, हाथ-पाँव का अंकन नही होता। किसी मे हाथ की अंगुलियाँ भी पूरी नही आँकी जाती हैं। किसी की आख बडी विचित्र केवल एक बिन्दी के रूप मे दिखाई जाती है तो किसी के ओठ और नाक भी अक्कोरे ही रख दिए जाते है पर जब वह मच पर प्रस्तुत होती है तो ये सारी कमियाँ उसकी पूर्णता में परिवर्तित होती दिखाई देती हैं। उसके पाँव नही होते हुए भी वह चलती नजर आती है। उसके ओठ न होते हुए भी वह हिलते हुए और आँखें न होते हुए भी वह चलायमान दिखाई पडती है। एक डेढ फुट की पुतली रगमच पर प्रदर्शन के समय पूरे साढे पाँच फुट की दिखाई देती है। यदि उसके स्थान पर साढे पाँच फुट की ही पूर्णांगी पुतली प्रदर्शित की जाए तो वह अपना समस्त प्रभाव छोड देगी और किसी प्रकार का भ्रम नही होने देगी।

पुतलियो का सारा यह विज्ञान उनके असल मे नकल और नकल मे असल होने में निहित है। यही उनकी अभिव्यंजना शक्ति है। निर्जीव और निष्प्राण होती हुई भी वह नाटक के मानवीय पात्र से सवाई होती है। प्रस्तुतीकरण के समय पुतली-चालक स्वय पुतली बन जाता है और अपने आपको आरोपित कर देता है। यदि ऐसा नही होता तो ये पुतलियाँ भी स्थिर चित्रो की तरह लगती। अपने गभीर प्रतीकात्मक और अनुरंजनात्मक प्रभाव के कारण ही हमारे देश की सभी पारपरिक शैलियो की पुतलियाँ विश्व की सर्वोच्च एव सर्वश्रेष्ठ अभिव्यजनात्मक पुतलियो में श्रेष्ठ समझी जाती है।

हमने शिक्षा के क्षेत्र को बड़ा संकुचित और सीमित कर दिया है। शिक्षा वही समझी गई जहाँ विद्यालय हों, कक्षा-कक्ष हो, उस कक्ष में ब्लैक बोर्ड हो, अध्यापक और मेज-कुर्सी हो और एक निश्चित पुस्तक हो जिसके पाठों को किसी तरह पूरा करना है। बच्चा उसे समझ न भी रहा हो, गले न भी उतार पा रहा हो परन्तु तो भी उसे यह स्कूली शिक्षा लेनी ही है। इस बधी-बधाई परिधि के परे भी बच्चे का एक बहुत बडा स्कूल होता है जहाँ उसे वस्तुत: अपने जीवन-निर्माण की विविध प्रक्रियाओ से गुजरना होता है। ये पुतलियाँ उसके जीवन-शिक्षण का महत्वपूर्ण अग हो सकती है। जिससे उसमे आपसी भाई-चारे, प्रेम, सोहार्द जैसे गुणो का विकास हो सकता है। उसकी भावनाओ का परिष्कार हो सकता है तथा शारीरिक, सामाजिक एव बौद्धिक विकास को बल मिल सकता है।

योजनाबद्ध पढाई और पठन-पाठन को रुचि-संपन्न बनाने के लिए बच्चो को पुस्तकालय, वाचनालय मे जाकर अपनी पुतली के लिए रचना सामग्री की टोह रखनी पडती है और इतिहास, भूगोल, विज्ञान गणित आदि विषयो को पुतली के माध्यम से जब वह अपने समस्त शरीर मे प्रविष्ठ देता है तो उसे इतना आत्मसात कर लेता है कि वह उसमे लीन हो असीम आनन्द की प्राप्ति करता है। तब पढाई के नाम की ऊब, कामचोरी, नकल करना, नारे और हडतालबाजी जैसी समस्याओ का समाधान भी स्वत ही हो जाता है। ऐसी स्थिति मे जहाँ बच्चा संकोच कर जाता है—जाने मे, बोलने मे, अपनी बात कहने मे वहाँ उसकी पुतली उसे खीच ले जाती है और उसके माध्यम से वह अपना सकोच छोडता है। सार्वजनिक कार्यो, मनोरंजनगृहो, खेल के मैदानों, शिविरो, सभा-सोसायटियो मे बच्चा बेधडक पहुँच कर अपनी पुतली और अपने प्रदर्शन से स्वत ही सबका प्रिय बन जाता है। तब उसकी प्रतिभा, कार्यक्षमता और व्यवहार कुशलता को दृष्टिपात कीजिए। आप देखेंगे, बच्चा तो बच्चा हुआ सो हुआ उसके साथ उसके माता पिता, अभिभावक और अन्य परिजनों, सामाजिको की उलझी हुई समस्याओं का भी स्वयमेव निराकरण होता नजर आएगा।

राजस्थानी पुतलियों के पारंपरिक अमरसिह राठौर के खेल में बाल-शिक्षण के कितने ही सूत्रो का गहवारा देखने को मिलता है। अकेला डुगडुगी वाला ही एक ऐसा रगला होता है जो अपनी डुगडुगी पर लकडी की मधुर थाप देता हुआ 'और

बजेगी'—'थोडी सी और बजेगी' कहकर सारे दर्शक समुदाय को लोटपोट कर देता है और चलते हुए खेल के विविध दृश्यो के कई अर्थ-सकेत दे जाता है। इसी प्रकार पहरेदारो का अदब से 'नजर मेहरबान' कहकर आगन्तुक राजा महाराजाओ का सुस्वागत करना, चोबदार का 'जो आज्ञा' कहकर चुपचाप हुक्म झेलना, पट्टेबाजो का लाहौर का तेगा और विलायत की तलवार चलाना—इस चलाचली मे कभी-कभी दोनो ही पट्टेबाज तलवारे लडाने के बजाय स्वय हवा में उडते हुए तलवार बन लडते दिखाई देते है। जब ये लडते-झगडते पास बैठे बच्चो मे जा गिरते है तब सारा बालक समुदाय हिल उठता है। एक ही पुतली का जनाना तथा मरदाना स्वाग भरना, ऊँट का नाचना, घोडे की कदमचाल भरना, मगर धोबी के करिश्मे मे धोबी की पोट मगर द्वारा ले जाना, तब बच्चे धोबी को आवाज लगाते हैं कि 'धोबीडा-रे-धोबीड़ा पीछे मगर, तेरी कपडों की पोटली खींच ले जा रहा है।' धोबी यह सुनकर मगर से अपनी पोटली छुड़ाता है। इस पर बच्चे खुशी मे झूम उठते है और जब फिर मगर अपना मुँह निकलता है तो बच्चे जोर-जोर से आवाज लगाकर धोबी को सावधान करते हैं कि इस बार मगर कहीं उसे ही न दबोच ले। इससे यह स्पष्ट लगता है कि बच्चों की भागीदारी पुतली खेल के साथ कितना महत्वपूर्ण भाग अदा करती है। यदि दर्शक और बच्चो का यह योग नही रहे तो पुतली खेल मे कोई जान ही न रहे।

हमारी पुतलियों मे यह सब कुछ है मगर हमारी निगाह कभी इन संदर्भ-सकेतो को नही पकड पाई। इसीलिए जब हमारे ही कठपुतलीकर्मी विदेशो में जाकर इसी तरह के प्रदर्शन प्रयोग देखते है तो उन्हें वहाँ के ये प्रयोग सर्वथा मौलिक और नई सूझबूझ वाले लगते है। उन्हे यह ज्ञात नहीं है कि इन विदेशियों ने ये सारी चीजें, ये सारा तत्र शिल्प, यह सारा कला-करिश्मा हमारी ही पुतलियो से प्राप्त किया है।

हमारे देश के ही कुछ लोग एक बार लदन के उस पुतली संस्थान मे जाकर दांतो तले अगुली दबाने लग गए जहाँ बच्चे और अध्यापक शिक्षात्मक पुतलियों का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे थे। यहाँ एक कमरे मे अचानक सब बच्चे बैठ गए। कमरे की रोशनी गुल हुई और पर्दा खुला, एक खिडकी से तोता आया जो अपने घोसले मे पडे अण्डों की हिफाजत कर उड गया। उसके बाद एक बाज पक्षी आया-चुपचाप दुबक-दुबक कर अण्डो की ओर अपनी चोच बढ़ाता हुआ, तब बच्चे उससे कहने लगे —'यहाँ कोई नही है। भाग जाओ।' बाज उड गया तब तोता आया तो बच्चों ने कहा 'तुम बार-बार बाहर मत जाओ, तुम्हारे बच्चो को कोई ले जाएगा।' तोता फिर उड गया। फिर दुष्ट बाज आया और अण्डो को तिनको के बीच से निकालने लगा तब बच्चो ने उसे डाँटा और मारने को उठ खडे हुए। अत मे बाज ने वृक्ष की खोह में अण्डों को छिपा दिया। तोता आया, अपने बच्चो को वहाँ नही पाया जब वह घबराया तो बच्चो ने वह खोह बता दी। उसने उस खोह से बच्चो को निकालने का प्रयत्न किया पर असफल रहा। इतने मे शेर आया जिसने सारे पेड़ को उखाड़कर खोह से बच्चे निकाल तोते को दिए। सारे बच्चे शेर को धन्यवाद देने लगे।

इस छोटे से प्रदर्शन में जितनी सक्रिय पुतलियाँ थी उतने ही सक्रिय बच्चे। इतने मे रोशनी आई, पुतलियाँ गुल हो गई, एक चालक महिला आई और सारी पुतलियाँ लाई। बच्चों से पूछा, 'बोलो बच्चो! तुम इनमे से किसे पसन्द करते हो?' बच्चो ने कहा, 'शेर को, यह कितना अच्छा, कितना दयालु और कितना सेवाभावी है।'

मेरी मान्यता है कि बच्चों को शिक्षा देने के लिए और कोई माध्यम इससे अधिक प्रभावकारी नही हो सकता। चाहिए केवल पुतलियो को और बाल-मानस को पहचानने वाला दृष्टा।

बाल-शिक्षण में दास्ताना पुतलियाँ सर्वाधिक

प्रभावी है। बच्चे उन्हें आसानी से चला भी लेते है और घर मे जो कचरा वस्तुएँ होती है उनसे उन्हे बना भी लेते है। इस शैली मे पुतली के अग विशेष महत्वपूर्ण नही होते पर बालक के समग्र अगो की क्रियाएँ मिलकर अच्छे से अच्छा प्रभाव दे ी है। इन पुतलियो का रगमंच सरल साधारण होता है। इसमें दिखाई तो केवल पुतली ही देती है परन्तु इसके पीछे छिपे हुए परिचालक को वे समस्त क्रियाएँ करनी होती है जो पुतली को दिखानी होती हैं। सवाद भी एक बच्चा बोलता है। एक बच्चा एक पुतली से लेकर चार पुतलियाँ तक चलाता है। ऐसी स्थिति मे उसे चारो पुतलियों का अभिनय, वाचन अपने मे धारण करना होता है।

इन पुतलियो के कथानक बाल-स्वभाव एव मनोवृत्ति के अनुकूल ही होने चाहिए। कथानक व्यंग्यविनोद से परिपूर्ण हो। पात्र अल्प तथा मतव्य अधिक बोझिल न होकर हल्के-फुल्के हो। बडे गभीर दार्शनिक और चिन्तनपरक कथा-सवाद इन पुतलियो के लिए ग्राह्य नही है। इन कथानको के लिए बच्चो की आयुसीमा का ध्यान रखा जाना आवश्यक है। चार से सात वर्ष तक की उम्र के बच्चो के लिए कल्पना-प्रधान पुतली नाटिकाओ की आवश्यकता होती है। इनके कहानियो का चयन वही होना चाहिए जो उन्हे अपने घरों मे या शालाओ मे सुनने को मिलती है। ये कहानियाँ बाल-कल्पना के विकास मे अधिक सहायक होती है। भूत-प्रेत तथा राक्षसो की कहानियाँ बच्चो के लिए घातक सिद्ध होती है जो पुतली नाट्य इन कहानियो को आधार मानकर लिखे जाएँ, उनके संवाद और भाषा इन बालको की सहजवृत्ति के अनुरूप हो, इस बात का ध्यान बहुत ही आवश्यक है।

आठ वर्ष से बारह वर्ष के बच्चो के लिए लिखे जाने वाले पुतली नाटको के पात्र अधिक खुशनुमा, रोचक तथा बाल जिज्ञासा और बाल-मन को अधिकाधिक रंगीन, रोचक और रसमय बनाने वाले होने चाहिए। कथानक अधिक प्रकृतिपरक हो ताकि बच्चे उन से अपना तादात्म्य बैठा सके। उनमे चाँद, सूरज, सितारे, पहाड, नदी-नाले तथा नाचते-गाते, उछलते-कूदते, दौडते प्राकृतिक जीव अधिक कारगर सिद्ध होते है। तेरह से सोलह वर्ष के बच्चों के लिए ऐसे नाट्य आवश्यक है जो उनके चारित्रिक गुणो के विकास मे सहायक हो। कर्त्तव्यपरायणता, बडो के प्रति आदर-भाव, साहसी जीवन तथा उच्चादर्शो के महत्व को प्रदर्शित करने वाले नाट्य अधिक उपयोगी हो सकते है।

इसके लिए बच्चों की पाठ्यपुस्तको से कोई पाठ, कहानी, कविता लेकर उसके आधार पर पुतली-सवादो की रचना कर पुतलीनाट्य का अभिमचन कराया जा सकता है। इससे बच्चा मनोरजन के माध्यम से जहाँ शिक्षा ग्रहण करेगा वहाँ उस पाठ को अधिकाधिक रूप से हृदयगम कर सकेगा, जिसके आधार पर उसे अपनी कक्षाएँ पास करनी होती हैं। यह काम जितना सरल है, उतना कठिन भी और प्रारम्भ मे जितना कठिन लगता है आगे जाकर उतना ही सरल भी है। लोकजीवन मे प्रचलित विविध बाल-साहित्य भी इसके लिए बडा उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

Children's Literature : Its Growth and Development

MANORAMA JAFA

As a part of the mainstream of literature, modern children's literature is now recognized as a separate field in creative writing. It, no more remains confined to the fables and folktales and has spread its dimensions far and wide

Like other literature, children's literature can be broadly divided into fiction, non-fiction and poetry In fiction we have short stories, long stories, full length fiction, plays, tales, mystery, suspense, historical stories, biographical stories, science fiction and plays. In non-fiction we have biographies and other writing based on actual facts In poetry we have nursery rhymes, short poems and long poems.

The most ancient traces of children's literature are found in oral literature, folk tales and fables But children's literature did not always have a separate identity Upto the nineteenth century children managed all right without having books specially written for them. The upsurge of new awareness for children's own books started in Europe when children's needs were given more recognition and importance. Parents, librarians, book publishers and psychologists felt the need for books specially written for children With this new awareness many writers and publishers entered the field. The requirements for children's book came to be studied and the foundation was laid for its future. At that time children's writers were not given due recognition and often they faced embarrassment and their work was considered easy But conditions changed and soon children's writers came to be regarded as mentionable as the writers of adult literature

Creative writing for children is a very recent addition to children's literature in India. In Hindi, Premchand can be regarded as the pioneer among modern creative writers for children. His story 'Idgah' has a childhood appeal and it well depicts the viewpoint of a child. Compared to Hindi, children's literature in some other Indian languages is more developed, but unfortunately this is enjoyed by a limited group, due to lack of translation in other Indian languages.

It is very interesting to note that most of the writers were mainly writing for adult and wrote for children only once in

while and none came up as a professional children's writer. I think this apathy towards children's writing had and to some extent still has a deep rooted reason. First and foremost, the children's writer is still not regarded as a serious writer. Besides, writing for children is not a playing proposition. The writers also harbour a fear that they would be looked down upon by the writers of adult literature

Apart from the above, the children's writer faces many other difficulties today. His greatest problem is where to get his writings published. It is unfortunate that we have very few children's magazines and publishers for children's books The publishers who at all publish children's literature, prefer to publish what has already been published in some form. So there is very little scope for creative writers

The only publishing organization that is devoted exclusively to publishing children's books is the Children's Book Trust It has several achievements to its credit which are of great importance to the development of good children's literature in this country. It has given recognition to children's writers. It has published creative writing. It has established a workshop for children's writers to help them and to develop their special talents

The NCERT has also made good contribution to the children's literature. Their textbooks have high standard stories, interesting articles with correct facts and suitable for different age groups. They are entertaining and children like them.

I had the occasion to participate in the second Children's Book International Conference at Boston, the United States of America It was a pleasure to see over 500 Indian books for children in a foreign country But I stood near the display desk looking into the books, I felt greatly disappointed The books were of almost similar hue and colour. As I recovered from my initial shock, I picked up a few books and turned the pages and the uninviting illustrations upset me more. Freshness of text and good illustrations were sadly lacking. Even books from some small countries like Malaysia, Thailand and Israel, though few in number, gave a better variety and novelty in ideas and illustrations I examined all the Indian books one by one, and it was interesting to note that more than half of them were either retold folktales or classical tales. Of course, there were some original writings and biographies also but their text was rather dull The visit left me very sad. In a country of 600 million, we did not have even a handful charming books for children

After turning over a few of the Indian books. one American writer commented, "Don't these look almost the same?". Then, "Can you tell me how Indian children like them?" I was tempted to tell her the truth but my pride did not allow me to do so. I did not tell her that Indian children who can speak and read English go in foreign books

In a country of our size, there is no dearth of readers, there is no dearth of publishers and also, hopefully no dearth of writers. Then why this apathy towards producing our own books ? Who is to be blamed for this ? Why are our children's books so disappointing ?

Producing good literature is the result of writer-editor and publisher's combined effort. If any of the three does not know his job fully and satisfactorily, the result would be disappointing. There is no point if a writer writes something which is good in his own opinion but is not read by children This is one reason why many of the textbooks and supplementary readers are hated by child readers

As a first step there is need to appreciate clearly what children like, what they do not like to read and what should be given to them The requirements for different age groups are also different There are limitations regarding themes, language and diction in children's literature A common notion seems to be that people write for children because it is easy, which is unfortunate Good juvenile writing needs even more strict discipline and know-how than for adult writing All these require a professional approach.

In the developed countries children's literature is taught at University level courses. There are innumerable opportunities for training writers, publishers, editors and illustrators These programmes help the beginner writer to develop an understanding of the subject and also enables him to receive guidance at the initial stage

Writers and editors should read the best available books for children published in other countries. Forming small groups of writers to discuss their manuscripts can help the writers a great deal. Organizing workshops for illustrators and writers and arranging courses in writing for children would be of great help. These should be arranged frequently in different cities It is necessary for the beginner writers to learn something about the craft before they go into writing fantasy and fiction or whatever their hearts desire

As a premier institution in the country, the NCERT must take a lead in developing professionalism in writers, editors, publishers and illustrators of children's books. There is need for training them and also for looking into their genuine problems and resolving them.

Children's Literature—Its Evaluation

DR. I. S. SHARMA

Need and Importance

Needless to say that a lot of material has been produced in the country during the last four decades in the name of childrens's literature Quite a good number of writers from different parts of the country have tried their hand at writing for children in various languages. Having viewed the need and importance of children's literature, several States started competitions and instituted awards for the writers in this field. Realizing the educational value of this type of literature in the early stages of the child, education departments in different States make bulk purchases of this material and supply the same to school libraries in respective States. Such and other acts on the part of governments have encouraged more and more writers of repute to try their pen for children.

Without emphasizing the already established importance of children's literature, it can be said that this type of material is more need-based, and more interesting than the textbooks even. A child may or may not like a subject or a particular textbook, which is imposed on him. Whereas, he has full freedom of choice to select any book and as many as he likes from among the list of children's literature. Therefore, in this type of literature the scope is vast and varied not only from the point of view of number of books but also thematic content, information, style, language and so on. Here the child is free to select and read the material as per his needs and interest. This type of vastness of the reading material helps to a greater extent in the allround development of the personality of the child. It also helps in the development of the reading habit in the child. Keeping all these factors in view, the need and importance of children's literature is unchallengeable

But a burning question is whether all that is printed is really useful for the children. Does it satisfy the needs and interests of the readers ? Does it help the children in healthy enjoyment ? Does it help in inculcating in them the desired social values ? These are some of the basic questions which need to be answered with the help of the available children's literature. In order to find a suitable

answer to all these questions, it becomes essential to evaluate children's literature from these angles. Now the question may be, what should be the aspects and criteria for evaluating children's literature so that one may get proper answers for the questions raised above

Indeed, the purpose of evaluation of this type of material is two-fold Firstly it helps the teachers, librarians and parents in selecting good and healthy books for the young readers and secondly, it helps the authors and publishers in bringing qualitative improvement in writing and producing such type of books. Thus, the evaluation of children's literature can be divided into two main aspects i e academic aspects and physical aspects

Academic Aspects

While considering the book from the academic point of view, one has to bear in mind the following factors ·

A Thematic content
 (i) Selection
 (ii) Presentation
B Linguistic content
C Illustrations

Selection of Thematic Content

One has to find answers to the following questions regarding the selection of thematic content :

Does the story have a theme ?
Is the theme worth imparting to children ?
Does the theme open new vistas of knowledge ?
Does the theme make the children familiar with the cultural heritage of the country ?
Does the theme emerge naturally from the story or is it stated too obviously ?
Is the theme interesting to children?
Does it avoid moralizing ?
Does the theme overpower the story?
Does it help in realizing the educational and national objectives ?
Does it inculcate desired values ?
Are the facts accurate ?

Similar questions may be answered regarding the suitability or otherwise of the plot :

Does the book tell a good story ?
Will the children enjoy it ?
Is the plot original and fresh ?
Is it plausible and credible ?
Are the events well prepared ?
Is there a logical series of happenings ?
How do the events build to a climax?
Is the plot well constructed ?
Does the plot have an appeal ?
Is the plot suitable for the age group it is meant for ?
Does the story have universal implications ?
How does the setting of the plot affect the action, characters or theme ?

Thus in the area of the selection of thematic conent the evaluator of children's literature will have to take care of the (i) age group, (ii) reading interests of the children, (iii) mental maturity level, (iv) development of desired social, moral and universal values, (v) opening new vistas of knowledge, (vi) development of imagination and creativity, (vii) promotion of national goals, (viii) promotion of national integration, (ix) promotion of reading habits and (x) accuracy of facts, etc.

Presentation of Thematic Content

After the selection of an appropriate theme, the author manipulates the whole plot and starts on writing the same. Thus, the presentation in children's books may be seen from the following angles

- Is the style of writing appropriate to the subject ?
- Is the form of selected presentation suitable for the theme ?
- Is the style straightforward or figurative ?
- Is the dialogue natural and suitable to the characters ?
- Are the sentence patterns suitable to the age group of the children ?
- Is the language accurate and simple ?
- Does it encourage imagination ?
- Does it help in developing creativity in the readers ?
- Does the child feel associated with the characters he reads in the book ?
- Is there unity and coherence in the development of theme ?

It is interesting to note that if the presentation of material is lucid with novelty and variety, even though the vocabulary is difficult, children take interest in reading such a book Howsoever important and attractive the theme may be, if its presentation is not upto the mark, the purpose of writing such a book is lost If the child gets involved as the theme develops he would definitely read the book with greater interest and comprehension. The total theme should be well-knit having the quality of unity and coherence. Characters should be convincing and credible so that they may leave an impression on the mind of the reader As far as possible stereotype characters should be avoided The behaviour and the deeds of the characters should be consistent with their age and socio-economic background These are some of the important things which should be kept in mind while evaluating children's literature from the point of view of its presentation

Linguistic Content

Language plays an important role in the presentation of thought and ideas Strictly speaking, it is the chief vehicle of thought As the reading of children's literature is not guided reading, simplicity and lucidity of the language can make it more and more interesting and comprehensible Not only this, if the language of children's books is within the comprehension of the readers, it can help in the development of reading habits. If the situation is the reverse, the whole labour of the children's writer goes waste. Therefore, proper selection of vocabulary for children's books is very essential. This vocabulary should also be used under proper context and according to the need and requirement of the character and incident. Children may not mind the use of a new word if it is explained in the proper context Whatever may be the situation or a plot or a character, if it is within the comprehension of the child from the point of view of language, he would definitely take an interest in reading it

Illustrations

Illustrations have a definite purpose in the children's books. Particularly in the case of younger children, pictures play an important role to motivate the child. This

motivation encourages the child to go through the printed pages of the book. Hence, pictures in the children's literature should be :

(i) Attractive
(ii) Motivating
(iii) Clear
(iv) Helpful in understanding the text
(v) Colourful
(vi) Purposeful
(vii) Relevant to the text
(viii) Adequate and accurate
(ix) Properly placed i e nearest to the context

The number and size of the illustration depends on the age group for which the book has been prepared There is a great need of more and big illustrations in the books for younger children. These illustrations should not only be attractive but also motivating and helpful for the children in understanding the content and context. Therefore, while judging the academic aspects of illustrations, one has to evaluate it from all the angles given above, particularly, the purpose with which it has been given.

Physical Aspects

Howsoever interesting may be a theme and its presentation, a book may lose its value if not produced well. Production and printing of a book, particularly a children's book, is as important as the selection and presentation of the thematic content. The evaluator, therefore, should cast his value judgement with regard to the physical aspects of a children book, bearing in mind the following criteria :

(i) Size of the book
(ii) Cover page
(iii) Printing
(iv) Binding
(v) Paper
(vi) Type Size
(vii) Price.

Size of the Book

The size of the book is an important consideration The size would depend on the age level of the child for which the book has been produced. Generally the following sizes for children's books are suggested :

SIZE OF THE CHILDREN'S BOOKS

School Stages	Page size in cms.	Page size in inches.
Primary	19cm. X 25-1/2cm.	7-1/2" X 10-1/2"
Middle	16-1/2 cm. X 21-1/2 cm.	6-1/2" X 8-1/2" foolscap quarto
High/Higher Secondary	12-3/4 cm. X 19 cm. 14-1/2cm. X 22-3/4cm.	5" X 7-1/2" or 5-3/4" X 9" Royal Octavo.

Many a time, the size of the children's book is dependent on the size of the paper available. Even pocket books have been started in the domain of children's literature. There must be some consideration with regard to the size of such books on the basis of the age group of the children The most important thing to be taken care of is that the child should be able to handle the book properly, comfortably and conveniently.

Cover page

The cover page of the book should be so attractive and fascinating that the child's attention may be snatched at the very first sight The design of the cover page should be indicative of the content matter given in the book Cover page picture should be shining and multicoloured as far as possible. The cover page should also be durable

Printing

The child's attention and interest can be sustained only when the book is well produced Therefore, the printer is fully responsible for making the book attractive, colourful and legible with bright black ink. There should not be any proof-reading mistake. The child is delighted to have a beautiful and colourful book in his hand.

Similarly, all care should be taken in the printing of illustrations. For this purpose, sharpness of blocks is one of the most essential qualities to give good results. The illustrations should not be too small to save space. Actually, the size of the illustrations should be determind by the age group for whom the book is being produced. There is a great need of big and colourful illustrations for young ones The evaluator also has to see that the illustrations have been placed nearest to the content matter dealing with that picture

Binding

As children's books have to change hands frequently, binding should be durable Thick stiff-board may be more suitable for this purpose. Binding may be such that the book may open flat so that the child may read it as ease.

Paper

The choice of the paper should be such that it may contain all the ingredients to bring up the expected result of printing. Therefore, the paper used in these books should be of heavy weight, smooth and white enough to give good results.

Type Size

The type size used in the book should be according to the age level of the readers Generally 18pt. for the primary, 14pt. black for the middle and 14pt white for the higher secondary school children is supposed to be suitable type size The type size for the cover page, for the captions etc. should be different. Faces of the letters should be clear.

Price

Keeping in view the purchasing capacity of the parents, the price of such books should not be exorbitant. It should be reasonable enough to suit the pockets of the common man Costly books how-

soever good they may be, cannot get popularity as they may not be read by many . Therefore, pricing formula should be based on the pocket capacity of most of the parents in the country.

Conclusion

Some of the important aspects and criteria for the evaluation of children's literature have been enumerated above. The evaluator should keep them in mind while evaluating children's books For every aspect he has to test the suitability of the book in accordance with the age group for whom the book has been written and designed. In this respect he has himself to judge for what age group or school stage the book is suitable.

If the book is excellent from some angles but poor from others, the evaluator can suggest modifications for the improvement of the book. For this purpose, he should note down all the plus and minus points of the book while going through the same to substantiate his judgement. In other cases he can directly recommend or reject the book with proper justification.

भाग—दो

कतिपय भारतीय भाषाओं
का
बाल-साहित्य

हिन्दी का बाल-साहित्य

डा० श्यामसिंह शशि

हरलाक तथा अन्य बाल मनोवैज्ञानिको के अनुसार बच्चे को सीधे उपदेश या निर्देश देना बाल-साहित्य की सौद्देश्यता को समाप्त करना है। आज का बालक इस दिशा मे और अधिक जागरूक हो गया है। उसे मनोवैज्ञानिक पद्धति पर आधारित प्रशिक्षण चाहिए और इसी आधार पर रचित साहित्य। वह बात-बात मे तर्क की अपेक्षा करता है तथा किसी तथ्य को तब तक नही स्वीकारता जब तक उसे विज्ञान की कसौटी नही मिलती। इसी परिप्रेक्ष्य मे हिन्दी के बाल-साहित्य का सक्षिप्त विश्लेषण हम यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

'टिक-टिक घोड़ा, टिक-टिक घोड़ा', 'चन्दा-मामा दूर के, लड्डू मोती चूर के, आप खाएँ थाली में, हम को देवें प्याली मे' 'हम वीर बनें बलवीर बनें' इन पक्तियो में, हिन्दी के बाल-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास मिल जाएगा। हिन्दी का शायद ही कोई ऐसा पाठक हो जिसने इस प्रकार की पक्तियाँ बचपन में न पढी हो। हम अतीत के पृष्ठो को उलटते है तो कुछ और सरस रचनाएँ दृष्टिगत होती हैं। 'मैया मेरी मै नहिं माखन खायो' और 'सिखवति चलन जसोदा मैया' जैसे पद कृष्ण के बचपन के मनोहर पक्ष को उजागर करते है। सूरदास के 'सूरसागर' मे व्यक्त शैशव आज भी अनेक बच्चो और बूढ़ो को समान रूप से आकर्षित करता है। सूर को यदि बाल-साहित्य का अग्रणी कवि कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

खडी बोली के बच्चो के प्रख्यात कवियो मे प० सोहनलाल द्विवेदी का नाम सर्वप्रथम लिया जा सकता है। गुडिया का चित्रण बड़े प्यार से करते है द्विवेदी जी—

मेरी गुड़िया भोली भाली,
देती नही किसी को गाली।
है इसके गालो पर लाली,
खुश हो रोज बजाती ताली।
मेरी गुडिया भोली भाली॥

पं० सोहनलाल द्विवेदी आज भी अबाध गति से चरित्र-निर्माण और राष्ट्रभक्ति से ओत-प्रोत रचनाओं का सृजन करते जा रहे है। उनका शिशु गीत बाल-साहित्य की अमूल्य धरोहर है। 'बाल सभा' के सपादक के रूप मे उन्होने अनेक बाल कवियो और साहित्यकारों का दिशा-निर्देशन किया। गाधी-दर्शन को बच्चों के लिए सरल भाषा मे जन-जन तक पहुचाना द्विवेदी जैसी विभूतियाँ ही कर सकती थी।

बाल-साहित्य की काव्य-सलिल में हम और गहरे उतरते है तो कई कविरत्न स्वत: दिखाई देने लगते है। सरस्वती कुमार दीपक ने निस्संदेह हिन्दी

के बाल-साहित्य को अनवरत रूप से समृद्ध किया है। उनके गीत शिशु-निकेतनो और बाल विद्यालयो में बड़े चाव से गाए जाते है। निरंकार देव सेवक ने तो इस दिशा मे सारा जीवन ही लगा दिया है। उन्होने सैकड़ो बाल-कविताएं लिखी। उनके अनेक संग्रह छपे और आज भी छप रहे है। बाल रुचि के प्राय: सभी विषयो पर सेवक जी की सशक्त लेखनी चली है। जैसे—

बरसो राम धडाके से,
बुढिया मर गई फाके से।
गरमी पडी कड़ाके की,
नानी मर गई नाके की।

बाल-साहित्य के पुराने रचनाकारो में सेवकजी के गीत चिरस्मरणीय रहेगे।

सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, सुमित्रा-नन्दन पत, मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह 'दिनकर', हरिवश राय बच्चन आदि प्रतिष्ठित हिन्दी कवियो ने भले ही बाल-साहित्य को कुछ विशेष नही दिया किन्तु ढूँढने पर कुछ ऐसी रचनाएँ अवश्य मिल जायेंगी जो बाल-मन को स्पर्श करती हैं। किन्तु उन्हे बाल-साहित्यकार नही कहा जा सकता। द्वारिकाप्रसाद मिश्र, राष्ट्रबन्धु, आरसी प्रसाद सिंह, कन्हैयालाल मत्त, रामावतार त्यागी, योगेन्द्रकुमार लल्ला, वीरेन्द्र मिश्र, रामकृष्ण शर्मा, विष्णुकांत पाण्डेय, श्रीनाथसिंह, कन्हैयालाल नन्दन, चन्द्रदत्त 'इन्दु', गोपालकृष्ण कौल आदि कवियो ने हिन्दी बाल-साहित्य की काव्यधारा को नए आयाम दिए है।

बालकोपयोगी गद्य साहित्य की ओर दृष्टिपात करने पर व्यथित हृदय, लल्ली प्रसाद पाण्डेय, कन्हैयालाल मिश्र, गुणाकर मुले, प्रभाकर माचवे, विष्णु प्रभाकर, आनन्द प्रकाश जैन, कमलेश्वर, मनहर चौहान, वेद मित्र, स्नेह अग्रवाल, सत्यप्रकाश शील आदि नाम सामने आते है। गद्य साहित्य से जब हम ज्ञान-विज्ञान की ओर उन्मुख होते हैं तो कुछ नाम सबसे अधिक आकर्षित करते हैं। जयप्रकाश भारती ने हिन्दी बाल-साहित्य को ज्ञान-विज्ञान मे समृद्ध किया। 'चलो चाँद पर चलें', 'हिमालय की पुकार' आदि पुस्तको पर उन्हे राष्ट्रीय और अन्त-र्राष्ट्रीय पुरस्कार मिले है। लगभग 100 पुस्तकों का सपादन कर उन्होने बाल-साहित्य मे नए कीर्ति-मान स्थापित किए है। माया शर्मा, वेद मित्र, रमेशचन्द्र प्रेम, ठाकुरप्रसाद सिंह, हरीश अग्रवाल, स्नेह अग्रवाल, रमेश दत्त शर्मा, योगराज थानी आदि लेखको ने हिन्दी के बाल-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। स्वय इन पक्तियो के लेखक ने हिन्दी के बाल-साहित्य को नृ-विज्ञान और रक्षा-विज्ञान से सम्बन्धित कई पुस्तकें समर्पित की है। लेखक की 'वनवासी बच्चे कितने सच्चे' पुस्तक हिन्दी में अपने ढग की पहली पुस्तक है।

हिन्दी बाल-साहित्य पर अनुसधान करने का श्रेय है—डा० हरिकृष्ण देवसरे तथा मस्तराम कपूर को। इन विद्वानो ने बाल-साहित्य पर अनु-सधान कर बाल-साहित्यकारो का गौरव बढाया है। वास्तव में, बाल-रचनाओ के रचनाकारो को अभी तक भी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों मे विशेष सम्मान नही दिया जाता है। बच्चो के लिए लिखना जितना कठिन कार्य है, उतना प्रबुद्ध पाठको के लिए शायद नही है। बाल-साहित्य के रचनाकार को बाल-सुलभ हृदय चाहिए और बाल-मनोविज्ञान का भी कुछ ज्ञान होना चाहिए। इस दिशा मे अनुसधान और आगे बढेगा, ऐसी आशा है। डा० देवसरे और डा० कपूर बच्चो के लिए साहित्य-निर्माण मे भी कटिबद्ध हैं।

हिन्दी के बाल-साहित्य को तीव्र गति से आगे ले जाने वाली कुछ महत्वपूर्ण पत्रिकाओ के नाम है—नदन (सपादक—जयप्रकाश भारती, भूतपूर्व सपादक श्री राजेन्द्र अवस्थी), पराग (संपादक—कन्हैयालाल नन्दन), बाल भारती (सपादक—सूर्यनारायण सक्सेना) तथा चम्पक, चन्दामामा आदि। इन पत्रिकाओं के माध्यम से अनेक नए

बाल-साहित्यकारों का उदय हुआ है। कुछ अन्य बाल-पत्रिकाओ के नाम भी उल्लेखनीय है—चुन्नू-मुन्नू, किशोर वानर, शिशु, बच्चो की दुनिया, गुड़िया, मुकुल, जीवन शिक्षा, रानी बिटिया, मिलिन्द, वैज्ञानिक बालक।

सरकारी तथा गैरसरकारी स्तर पर प्रकाशन सस्थाएँ बाल-साहित्य का प्रचुर मात्रा मे प्रकाशन करती है। चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट, प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान एव प्रशिक्षण परिषद्, नेशनल बुक ट्रस्ट के अतिरिक्त राजपाल एण्ड सस, आत्माराम एण्ड सस, हिन्दी प्रकाशन सस्थान आदि अनेक निजी प्रकाशक इस दिशा मे उल्लेखनीय कार्य कर रहे है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि क्या बाल-साहित्य के नाम पर केवल भूतप्रेत को कहानियाँ, परीकथाएँ, हास्य कथाएँ या मनोरजक कथाएँ प्रकाशित की जाएँ ? आखिर ज्ञान-विज्ञान को अधिक स्थान क्यों नही दिया जाता सभी बाल-पत्रिकाओं मे ? आज का बालक सही जानकारी प्राप्त करना चाहता है, उसे तथ्यात्मक सामग्री भी चाहिए। वह भूतप्रेत के युग में नही राकेट और स्पूतनिक के युग मे साँस ले रहा है, उसे ज्ञान-विज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता है। आज के बालक को अन्तरिक्ष की कहानियाँ जानने मे रुचि है। वह चाँद-सितारों के ऊपर उड़ान भरना चाहता है। अत. इस प्रकार की सामग्री की महती आवश्यकता है।

कुछ समय पहले पश्चिमी देशों मे भी यह धारणा थी कि बच्चो को तथ्यों पर आधारित ऐतिहासिक सामग्री देने की जरूरत नहीं है, किन्तु यह विचार धीरे-धीरे समाप्त होता गया। आज प्रायः सभी बाल-मनोवैज्ञानिकों का विश्वास है कि बच्चों को तथ्यों पर आधारित ज्ञान-विज्ञान की पुस्तकें देनी चाहिए। उसे जैट विमान के बारे मे जानकारी देनी चाहिए तो हाइड्रोजन बम का भी ज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार वह आज अपनी प्रतिभा को विकसित करने के लिए नए-नए विषयों में भी रुचि लेता है। वह अपने पडोसी देशो के बारे मे जानना चाहता है। उनकी ओर दोस्ती का हाथ बढाना चाहता है और वसुधा को परिवार की तरह देखने को लालायित है। हर्ष का विषय है कि हिन्दी बाल-साहित्य के लेखक और प्रकाशक इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य कर रहे है, किन्तु अभी बहुत किया जाना शेष है।

अन्त मे सभी बाल-साहित्य के लेखको तथा प्रकाशको का ध्यान एक कटु सत्य की ओर दिलाना चाहूँगा। आज साहित्य की अन्य विधाओं की तरह बाल-साहित्य मे भी गुमराह करने वाले अनेक लेखक तथा प्रकाशक चाँदी बनाने मे लगे है। ट्रेडमार्क नामो से मारधाड करने वाले बाल-उपन्यासो की व्यापक पैमाने पर बिक्री हो रही है। माँ-बाप के पास इतना समय नही कि वे अपने बच्चो पर रोक लगा सकें या उन्हे अच्छा साहित्य पढने के लिए दे सकें। दूसरी ओर बाल-पाकेट बुक या भ्रष्ट बाल-पत्रिकाएँ बच्चों के स्वस्थ मानसिक विकास के विरुद्ध बहुत बड़ी साजिश कर रही है। यदि इस दिशा मे हमारा लेखक, प्रकाशक और शासक मौन रहा या तटस्थ भाव से यह सब घिनौने दृश्य देखता रहा तो एक दिन गुलशन नन्दा, कर्नल रजीत या समीर जैसे ट्रेड मार्क बाल-साहित्य पर भी छा जायेंगे और तब हिन्दी का अच्छा बाल-साहित्य पुस्तकालयो तक ही सीमित रह जाएगा।

आइये अन्तर्राष्ट्रीय बाल-वर्ष में हम कुछ नई राहे खोजे और कुछ नए आयामो की ओर उन्मुख हो। विभिन्न भारतीय भाषाओं से कुछ ले और कुछ दे तथा विश्व के बाल-साहित्य से भी आदान-प्रदान करें।

मराठी का बाल-साहित्य

सुधाकर प्रभु

बीजारोपण

मराठी बाल-साहित्य का वटवृक्ष आज समस्त साहित्य-विधाओं, शाखाओं, प्रशाखाओं से सम्पन्न है। लेकिन 1815 ई० तक मराठी का कोई भी लिपिबद्ध बाल-साहित्य उपलब्ध नहीं था। उस समय का बाल-साहित्य केवल मौखिक रूप में था। घर-घर की दादी या नानी कथाएँ सुनाकर बच्चों का मनोविनोद करती थी। मराठी बाल-साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मराठी बाल-साहित्य की प्रारम्भिक रचनाएँ अनूदित है। सन् 1806 मे भोसले राजा सरफोजी ने अंग्रेजी 'इसापनीति' का मराठी अनुवाद प्रकाशित कराया, मराठी बाल-साहित्य की यह पहली पुस्तक आज ब्रिटिश सग्रहालय मे सुरक्षित है। सन् 1815 ई० मे बैजनाथ शास्त्री ने संस्कृत 'पचतत्र' तथा 'हितोपदेश' के बगला सस्करण का मराठी मे अनुवाद किया। इसे मराठी बाल-साहित्य का बीजारोपण माना जाएगा।

सरकारी शिक्षा-विभाग

सन् 1822 ई० मे महाराष्ट्र मे अंग्रेज सरकार ने शिक्षा-विभाग की स्थापना की। विद्यालयों की नींव पडी। पर समस्या पाठ्यपुस्तको की थी। उनके पास समिति गठित करके पुस्तके तैयार करने के लिए समय नही था। इस समस्या को हल किया तत्कालीन प्रकाशित पुस्तक 'सिंहासन बत्तीसी' ने। बैजनाथ शास्त्री द्वारा लिखित इस मराठी पुस्तक को पाठ्यपुस्तक के रूप में स्वीकृत किया गया।

यूरोपियों की मराठी सेवा

इस काल मे श्री टाऊनशोड द्वारा लिखी गई 'बाल गोष्ठी' पुस्तक बाल-जगत के लिए एक अनमोल भेंट थी। शासक रूप में अंग्रेजों ने इस क्षेत्र मे जो कार्य किया उसमे मेजर कंडी, और कँरीका का कार्य उल्लेखनीय है।

सन् 1828 मे अंग्रेज सरकार की प्रेरणा से मराठी की पहली पाठ्यपुस्तक 'बालमित्र' और 'इसापनीति' प्रकाशित हुई। आज भारत सरकार उत्कृष्ट बाल-साहित्य के लिए पुरस्कार देती है। महाराष्ट्र की तत्कालीन पाठ्यपुस्तक-समिति ने अच्छी पाठ्य-पुस्तक तैयार करने के लिए पुरस्कारो की घोषणा की थी। श्री बापू छत्रेजी के बालमित्र और इसापनीति को 2000 रु० और 1000 रु० के दो पुरस्कार मिले। ये दोनों पुस्तकें विषय-वस्तु, भाषा एव रचना-शैली की दृष्टि से बालकोपयोगी नहीं कही जा सकती। सन् 1855 ई० मे मेजर कडी ने उनमे आवश्यक सुधार किए।

1830 मे 'बेताल पच्चीसी' और 1838 मे 'बोध

कथा' पुस्तक बंगला लेखक ताराचंद दत्त द्वारा लिखित 'लीजिंग टेल्स' की अनुवाद मात्र थी। सन् 1846 मे हरि केशव पाठारे ने 'नीति ग्रन्थ' पुस्तक लिखी जिमे पाठ्यपुस्तक के रूप मे मान्यता प्राप्त हुई। 'बालमित्र' की प्रस्तावना में सन् 1828 ई० मे बापू छत्रेजी ने बाल-साहित्य के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए रजन और सस्कार दोनो को अत्यधिक महत्व दिया है।

अनुवाद का काल

इसके पश्चात् मराठी मे अग्रेजी बाल-साहित्य के अनुवाद का कार्य आरम्भ हुआ। अर्वाचीन मराठी साहित्य का प्रारम्भ बाल-साहित्य से हुआ है यह बात मराठी बाल-साहित्यकारो के लिए गर्व का विषय है। 'शालोपयोगी नीति कथा' जैसी अनूदित किताबे घर-घर मे बडी रुचि से पढी जाने लगीं। लेकिन नीतिकथा, बोधकथा लिखते समय या अनूदित करते समय रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों के अन्तर्गत आई कहानियो को लिखना हमारे तत्का-कालीन बाल-साहित्यिक भूल गए। यह दुर्भाग्य की बात है कि ये साहित्यकार रामायण-महाभारत के शील और शक्ति-संपन्न बालवीरो के पराक्रम की गाथाएँ अनदेखी कर गए।

आद्य बाल-साहित्यकार

मराठी के आद्य बाल-साहित्यकार का गौरव विनायक कोडदेव ओक को प्राप्त है। उन्होंने सन् 1881 ई० मे बालको के लिए 'बालबोध' पत्रिका निकाली। मराठी की यह पहली बाल-पत्रिका है। अपनी पत्रिका के पहले अक मे उन्होंने लिखा है कि 'अनेक विषय ऐसे है जो विद्यालय में पढाए नही जाएँगे किन्तु उन्हें पढ़ना चाहिए। विषयो की जान-कारी तुम्हे इस पत्रिका से मिलेगी। तुम्हारा मनो-रजन हो इसके लिए हम प्रयत्नशील रहेंगे।'

मराठी बाल-साहित्य का 'आनन्द'-युग

विषय-वस्तु, भाषा एव रचना-शैली की दृष्टि से सच्चे अर्थों में मराठी बाल-साहित्य का प्रारम्भ वासुदेव गोविंद आपटे की 'आनद' पत्रिका से हुआ। 1906 ई० से इस पत्रिका का प्रारम्भ हुआ। मराठी बाल-जगत का सही रंजन एव प्रबोधन इस पत्रिका के माध्यम से हुआ। 'आनद' पत्रिका पर पालित-पोषित वाचको की ही नही वरन् लेखको की एक पीढी भी महाराष्ट्र में निर्मित हुई। आनद के सपादक आपटे जी की आनंद पत्रिका के रूप मे मराठी बाल-साहित्य में एक नए युग का उदय हुआ। मराठी के श्रेष्ठ नाटककार स्व० रामगणेश गडकरी जैसे महान लेखक की सर्वोत्कृष्ट बाल-नाटिका 'सकालचा अभ्यास' आनंद पत्रिका में सर्वप्रथम छपवाई गई। बत्तीस पृष्ठो की इस पत्रिका मे कथा, कविता, यात्रा वर्णन, वैज्ञानिक समाचार के साथ बच्चों की रचनाओ को भी आग्रहपूर्वक प्रकाशित किया जाता था।

मासिक पत्रिकाओं का कार्य

मराठी बाल-साहित्य आज चारों कोनो से खिल उठा है। यह गौरवमय कार्य मासिक पत्रिकाओ के माध्यम से हुआ है। वा० गो० आपटे ने बाल-रामायण, बाल-महाभारत की कहानियाँ पहले 'आनद' पत्रिका के माध्यम से बालकों के सम्मुख प्रस्तुत की। मासिक पत्रिकाओ की यह परम्परा अखडित रही। बालबोध के बाद आनंद शालापत्रक, बालोद्यान, बालमेवा, खेलगाडी मुलाचे मासिक जैसी उत्तमोत्तम पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी। 'खेलगाडी' तो सचमुच बच्चों की सबसे प्यारी पत्रिका बनी। स्वातत्र्यपूर्व काल की ये पत्रि-काएँ बाल-साहित्य की सबसे बडी धरोधर मानी जाएँगी। आज इन पुरानी पत्रिकाओं मे से सिर्फ 'आनद' नियमित रूप से प्रकाशित होती है।

स्वातंत्र्योत्तर काल की मराठी पत्रिकाएँ

सन् 1947 ई० के पश्चात् बालमित्र, गोकुल कुमार, बीरबल, टारझन, गम्मत-जम्मत, फुलबाग, मुलांचा श्याम जैसी पत्रिकाओ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। मराठी के श्रेष्ठ बाल-साहित्यकार भा० रा०

भागवतजी ने 'बालमित्र' का प्रकाशन किया। 'फुलबाग' पत्रिका के सपादक अशोक माहीमकर पूरी पत्रिका को हाथ से लिखते है फिर हर पृष्ठ के ब्लाक बनवा कर पत्रिका प्रकाशित करते है। महाराष्ट्र शासन के द्वारा प्रकाशित होनेवाली किशोर पत्रिका साहित्य और साज-सज्जा की दृष्टि से अन्य भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओ में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। वा० गो० आपटेजी ने बाल-साहित्य के प्रकाशन के नए युग का आरम्भ किया जिससे नेर्लेकर, किनाबखाना, चित्रशाला, केशव भिकाजी ढवले जैसे मराठी के बाल-साहित्य के प्रकाशकों ने इस क्षेत्र मे पदार्पण किया। वा० गो० आपटेजी ने बाल रामायण, बाल-महाभारत के साथ 'मनी आणि मोत्या' जैसी प्राणी कथाओं की पुस्तके भी लिखी। अंग्रेजी परी-कथाओं के अनुवाद-कार्य मे भी गतिशीलता आई। मौलिक मराठी रचना के साथ इन अनूदित रचनाओ की भी माँग बढ गई। लेकिन मराठी बाल-साहित्य को अनूदित परीकथाओ तक सीमित रखने मे जो धोखा था वह हमारे बाल-साहित्यकारो ने अच्छी तरह परखा था। इसलिए परिकथा के साथ प्राणी कथा, शौर्य कथा, साहस कथा, ऐतिहासिक कथा, पौराणिक कथा जैसा मर्मस्पर्शी साहित्य उन्होने बालको के सम्मुख रखा। मा०के० काटदरे, का० रा० पालवणकर, दे० ना० टिलक, मा० क० कारखानीस, वि० स० गवाणकर आदि के नाम इस कहानी-साहित्य के साथ जुडे हुए हैं।

कविता

स्वातन्त्र्यपूर्व मराठी बाल-साहित्य मे कहानी-साहित्य के साथ उतनी ही परिपक्वता से प्रकाशित होनेवाले साहित्य में काव्य का स्थान सर्वोपरि है। मराठी में, जिनकी जन्मशताब्दी चार साल पहले मनाई गई थी भास्करराव तांबे के बालगीत आज भी उच्च कोटि के गीत माने जाते है। वा० गा० मायदेव के शिशुगीत, राजकवि यशवतजी की 'मोती बाग' ने मराठी बाल-कविता के एक नए युग को जन्म दिया। जिनके फलस्वरूप पाठ्यपुस्तकों में उपदेश परक कविताओ को न्यूनता प्रतीत हुई और मनो-रजक कविताओं को स्थान दिया जाने लगा। प्रह्लाद केशव अत्रेजी ने अपने 'नवयुग' वाचनमाला के माध्यम से इस क्षेत्र मे एक नया कदम रखा।

आज इस काव्य-विधा मे गोपीनाथ तलवलकर, ग० ह० पाटील, श्री० बा० रानडे जैसे स्वातन्त्र्यपूर्व काल के बाल-गीतकारो के साथ सजीवनी मराठे, शाता शेलके, वि० म० कुलकर्णी, ना० गो० शुक्ल, सुमति पायगावकर आदि कवियो की बाल-कविताएँ बालकों के मन को मोहित करने लगी है। 1954-55 मे भारत सरकार द्वारा साहित्य-प्रतियोगिता आरम्भ हुई। पहला पुरस्कार लीलावती भागवत के शिशु गीतो को मिला और मराठी मे शिशु गीतो का मानो उपवन ही पुष्पित हो उठा। नयन-रम्य साज-सज्जा के साथ शिशुगीतों के सग्रह प्रकाशित होने लगे। निर्मला देशपाडे, मगेश पाडगावकर, सरिता पदकी, वि० दा० करदीकर, शिरीष पै, शाता शेलके, चिं० त्र्य० खानोलकर जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकारो ने इस क्षेत्र को सुजलाम सुफलाम बनाया। आज वृन्दा लिमये, विजया जागीरदार मदा बोडस, तारा वैशंपायन, श्री स० रिसबूड, महावीर जोधले की रचनाएँ बच्चो को लुभाती है।

कहानी-साहित्य

वा० गो० आपटेजी की पत्रिका 'आनन्द' ने शिशुकथाओं का नया द्वार खोला। आनन्द के द्वारा कहानी-लेखको की एक नई पीढ़ी प्रकाश मे आई। ताराबाई मोडक, कावेरी कर्वे का नाम शिशुकथा के क्षेत्र मे प्रसिद्ध है। ताराबाई मोडक और गिजुभाई बधेका ने शिक्षण-पत्रिका के माध्यम से मौलिक शिशुकथाएँ लिखी।

सन् 1940 में साने गुरुजी की 'गोड गोष्टी' प्रकाशित होने लगी। एक से बढ़कर एक 'गोड गोष्टी' के दस भाग प्रकाशित हुए। हमारी पीढ़ी के बालकों के लिए मानो अल्लाउद्दीन का खजाना ही खुल गया। साने गुरुजी का नाम चिरंतन करने

वाली उनकी रचना 'श्याम ची आई' है। जिसमें माँ के वात्सल्य एव मातृ-प्रेम का अनुपम चित्रण हुआ है। वात्सल्य तथा भाई-बहन के प्रेम की अनूठी कलाकृति है, अमरेन्द्र गाडगील की 'ताई आणि भाऊ'। माँ के प्यार और करुणा के बधन मे बद्ध साने गुरुजी के श्याम के साथ एक नया 'बाल सखा' मराठी बाल-साहित्य मे अवतीर्ण हुआ। ना० धो० ताम्हनकर की 'गोट्या' पुस्तक तीन भागो मे प्रकाशित हुई। साहस के नए विचार हमेशा कार्य-प्रवण रहने वाले 'गोट्या' ने दिए। 'गोट्या' की परम्परा में वि०वि० बोकील का वसत(विल्यम का रूपान्तर) खानोलकरजी का चन्दू, भा० रा० भागवत का 'फास्टर फेणे' और सुधाकर प्रभु के 'राज प्रधान' ने इस परम्परा को आगे बढाया है।

अनूदित विदेशी साहित्य

कथा-साहित्य मे इसी समय एक और धारा गतिमान बनी। हन्स अडरसन, ग्रीम की कहानियो के अनुवाद मालतीबाई, सुमति पायगांवकर ने किए। अनूदित परीकथाओ के साथ भा० रा० भागवत, भा० म० गोरे, सुरेश शर्मा, ह० रा० वाघोलीकर, जैसे लेखको ने राबिन्सन क्रूसो, रॉबिनहुड, आयव्हँनो, टारझन, टॉम सायर, थ्री मेस्केटीअर्स आदि पुस्तको के माध्यम से साहस-कथाओ की एक अन्य विधा का प्रणयन मराठी बाल-साहित्य मे किया। ज्युल व्हर्न के अनुवाद के लिए भा० रा० भागवत जी का नाम प्रसिद्ध है।

विदेशी परीकथा और साहस-कथा का यह आक्रमण मराठी के कुछ विचारको को खटकने लगा। ऐसे विचारकों में एक थे श्री अमरेन्द्र गाडगील। भारतीय संस्कृति की शुद्ध साहित्य गगा को उन्होंने मराठी बाल-साहित्य के आँगन मे लाने का प्रयत्न किया। गो० नि० दाडेकरजी को प्रेरणा देकर एक योजनाबद्ध पुस्तकमाला उन्होने १९४६ मे प्रकाशित की। उस पुस्तकमाला का नाम 'आई ची देणगी' था। ये कहानियाँ रामायण—महाभारत के महासागरों से उच्च कोटि की मोतियों की माला के रूप मे मराठी बाल-वाचकों के समक्ष प्रस्तुत हुई। रचना-शैली और भाषा-शैली की दृष्टि से ये कहानियाँ बेजोड है। फिर भारतीयता की एक नई लहर मराठी बाल-साहित्य मे आई। इसके पहले वि० कृ० श्रोतीय जी की 'वेदातील कथा' दशकुमार चरित्र ने सस्कृत साहित्य की धरोहर का परिचय करवा दिया था। ऐतिहासिक तथा पौराणिक कथाओ की सैकड़ो किताबें प्रकाशित होने लगी। ऐतिहासिक कहानियो के लेखक श्री श०रा० देवले एक उच्च कोटि के कहानीकार है। इतिहास के अध्यापक होने के नाते उन्होने बच्चो को सुनाने के लिए ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी। श० रा० देवले को कई वर्षो तक 'शाला पत्रक' पत्रिका के सपादन कार्य का अवसर मिला। उनके पहले ऐतिहासिक कहानियों का शुभारम्भ वि० ग० लेले, रियासतकार सरदेसाईजी आदि ने किया। आज ऐतिहासिक कहानियों के क्षेत्र में श्री के० देवधर, डा० म० वि० गोखले अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुके है।

लोक-साहित्य

परी-कथाओं की एक विधा, लोक-साहित्य भी भारतीय भाषाओं मे प्रकट हुई। हमारे नाना नानी रामायण तथा महाभारत की कहानियों के साथ इन लोककथाओं को भी बच्चो को सुनाया करते थे। बाल-साहित्य का प्रारम्भ अग्रेजो की प्रेरणा से हुआ। वैसे लोककथाओ के सकलन का पहला शुभारंभ महाराष्ट्र मे 'फ्लोर ऑन स्टील' इस मिशनरी महिला ने किया। सुप्रसिद्ध मराठी लेखिका दुर्गाबाई भागवत ने जातक-कथाओं तथा भारतीय लोककथाओ के कई सग्रह लिखे। साने गुरू जी की 'सोन साखली' वामन चोरघड़े की 'भाग्यवती' तथा 'अबोली' मराठी की प्रसिद्ध लोक-कथाएँ हैं। महादेवशास्त्री जोशी जी ने भी लोक-कथाओ का संकलन, संपादन किया है। इस क्षेत्र मे के० नारखेडे, मालती दाडेकर, डा० सविता

जाजोदिया का कार्य भी उल्लेखनीय है।

जीवनी-साहित्य

महापुरुषों की जीवनी से सम्बन्धित पुस्तकों के प्रति बच्चो का आकर्षण कम प्रतीत होता है। विद्यालयों मे ऐसी किताबे पढने के लिए उन्हे बाध्य किया जाता है। मराठी बाल-साहित्य की जीवनी साहित्य-विधा कहानियो की तरह रजक और समृद्ध है। दा० न० शिखरेजी के द्वारा लिखी गई चरित्र-माला रोचक है। यदुनाथ थत्ते, श० रा० देवले, अरविंद ताटके, आ० ना० पेडणेकर, दत्ता टोल, दत्ताजी कुलकर्णी, ऐसे कई नाम जीवनी-साहित्य में दिखाई पडते है। आरगडे—कुलकर्णी प्रकाशन, विदर्भ मराठवाडा प्रकाशन, जगताप—कारले प्रकाशन आदि प्रकाशन-सस्थाओ ने सुन्दर जीवनी-साहित्य प्रकाशित किया है।

बाल-नाट्य

मराठी साहित्य में 'नाटक' का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय साहित्य में मराठी नाटक अपना अलग प्रभाव रखता है। मराठी बाल-साहित्य का बाल नाट्य-विभाग भी सम्पन्न है। बाल-नाट्य के दो प्रवाह है। मराठी मे बाल-नाट्य प्रकाशित होते हैं और रंगमंच पर अभिनीत भी होते है।

हर रविवार को बच्चों के लिए बडे थियेटरो मे बाल-नाट्य अभिनीत किए जाते है। बाल रगमच का प्रयोग मराठी मे अत्रेजी के 'गुरुदक्षिणा' नाटक से हुआ था। फिर पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओ का आधार लेकर कई बाल-नाट्य लिखे गए। शिवाजी की वीरगाथा तो मराठी बाल-नाट्य की अक्षय और अमर आधारशिला है।

रत्नाकर मतकरी ने हन्स अडरसन की परी-कथाओ का आधार लेकर 'अफाट गाव ची बेफाट मावशी', 'कललाव्या-काधाची कहाणी', 'अलबत्या गलबत्या' आदि दस- बारह एक से एक श्रेष्ठ बाल-नाट्य बाल रगमच को दिए। सई परांजपे ने आकाशवाणी के माध्यम से कई नाटक मराठी बाल श्रोताओ के सामने प्रस्तुत किए। उनमे से 'शेपटीचा शाप', 'बाली काय गम्मत' आदि पुस्तक रूप मे प्रकाशित होकर बालजगत का सम्मान प्राप्त कर चुके है। बाल-नाटक के क्षेत्र मे नरेन्द्र बल्लाल, वदना चिटणकर, शाम फडके, वा० रा० सोनार, दिनकर देशपाडे, दत्ता टोल जैसे कई नाम हमारे सामने आते हैं। जिस तरह बाल-काव्य को मगेश पाडगॉवकर, विंदा करदीकर जैसे साहित्यकारो का योगदान मिला वैसे पु० ल० देशपाडे जैसे श्रेष्ठ मराठी नाटककार की 'नवे गोकुल' बाल-नाटक की बडी उपलब्धि मानी जाती है। विजय तेडुल-कर की 'पाटलाच्या पोरीच लगीन' भी मानी हुई रचना है।

शालेय रंगमच और शालेय-नाट्य

मराठी का बाल-नाट्य वास्तव मे शालेय नाट्य है। इस मराठी बाल रगमंच का प्रारम्भ वास्तव मे शालेय रगमच से हुआ है। राम गणेश गडकरी की रचना 'सकालचा अभ्यास' इसका अच्छा प्रमाण है। पाठशाला के वातावरण मे चालीस से पैंतालीस मिनट की अवधि मे खेले जाने वाले कई बाल-नाटक सुधाकर प्रभु, वासुदेव पालंदे, न०म० जोशी, पु०ग० वैद्य, कामथ आदि अध्यापको ने लिखे हैं। उनमें 'वाढदिवसाची भेट', 'स्वराज्याचा कानमत्र' हर वर्ष खेले जाते है।

कादंबरि का (बाल-उपन्यास) कर्तृत्व

गद्य के क्षेत्र मे मराठी की शिशु-कथा, बाल-कथा, बाल-नाटक जैसे बाल-उपन्यास का प्राँगण भी समृद्ध है। व्होरा प्रकाशन, मैजेस्टिक, पाप्युलर, सजय आदि प्रकाशन-संस्थाओ ने सैकडो की संख्या मे बाल-उपन्यास प्रकाशित किए। विषय-शैली, रचना, आलेखन की दृष्टि से ये बाल-उपन्यास मराठी की बेजोड कलाकृति है। शुद्ध शास्त्रीय वातावरण में सुसस्कारो के उद्देश्य को ध्यान मे रख कर विविध विषयों पर प्रकाशित होने वाले ये

प्रेरणादायी बाल उपन्यास अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद करने योग्य है। बाल-उपन्यास के क्षेत्र में भा० रा० भागवत, राजा मंगलवेढेकर, सुधाकर प्रभु, श्यामला शिरोलकर, तारा पण्डित, शैलजा राजे, साधना कामथ, आशा भाजेकर, मालती दांडेकर, सुशीला चिकटे आदि के नाम उनकी शैली के लिए प्रसिद्ध है।

तैमूरलंगाचा भाला, भुताली जहाज (भा०रा० भागवत) मुक्या (राजा मंगलवेढेकर) प्राणी स्वतन्त्र झाले, घिटुकली (सुधाकर प्रभु) जा उडुनी पाखरा, मंदिर, चबलची मुले (श्यामला शिरोलकर) अद्भुत ढोलवादक (सुशीला चिकटे) देव परतले (अशोक देशपांडे) पताका (मुक्ता केणेकर) आदि के बाल-उपन्यास ख्याति प्राप्त है।

बाल-विज्ञान-साहित्य

मराठी मे विज्ञान-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा मे है। लेकिन यह विज्ञान साहित्य वैज्ञानिको की जीवनियो और उनके आविष्कारो की कहानियो तक सीमित था। छात्रो के लिए आकर्षनीय, सरल भाषा और शैली में यह साहित्य कैसे लिखा जाए यह एक समस्या थी। लेकिन गजानन क्षीरसागर, पु० ग० वैद्य, किशोर बापट जैसे महानुभाव इस क्षेत्र मे नए प्रयोग कर रहे हैं। इन लेखकों का विज्ञान-साहित्य कथा तथा उपन्यास शैली मे आबद्ध है।

लेकिन 'देखो और करो' जैसी बच्चो की कृति की प्रेरणा देने वाला साहित्य न के बराबर है। 'छंद' (हॉबी) साहित्य मे आशाल भालेकर की दो पुस्तकें उल्लेखनीय है।

बाल-साहित्य की चित्रकारी

मराठी बाल-साहित्य की साज-सज्जा के क्षेत्र में चित्रकारों का कार्य भी संतोषजनक है। केशव भिकाजी ढवळे जैसे प्रकाशनों ने जिद से यह कार्य किया। 1940—45 की अवधि में ढवळे की पुस्तके इस क्षेत्र में उनके परिश्रम का परिचय देती है। पाप्युलर प्रकाशन की कविताओं की पुस्तके अगड-बगड, फेरीवाला, राक्षसराज, नाट्यछटा, मतरलेली तलवार आदि पुस्तके मुखपृष्ठो के लिए और प्राणी स्वतन्त्र झाले, तिरसिंगराव, अंगतपगत आदि पुस्तके भीतरी साज-सज्जा के लिए विशेषज्ञों से प्रशसा के पत्र प्राप्त कर चुकी है। मराठी में पद्मा सहस्रबुद्धे, प्रताप मुलीक, अनंत सालकर, भय्यासाहेब ओंकार अपनी विशेष चित्रशैली के लिए प्रसिद्ध है।

चित्र-पुस्तकें

1969 मे इण्डिया बुक हाउस ने इतिहास तथा पुराण-ग्रन्थ, रामायण, महाभारत की कहानियो का आधार लेकर मराठी मे अमर चित्रकथा माला आरम्भ की है। मराठी के साप्ताहिक केसरी मे भय्या साहेब ओंकार तथा स्वराज्य मे वसत सहस्र-बुद्धे एक-एक चित्रकथा देते है।

लक्षवाचक संघ

आज पुस्तको के मूल्य बढ रहे है। मराठी में 2100 से लेकर 3100 तक सस्करण होते है। इतनी पुस्तके बिकने मे तीन-चार साल लगते है। 80 पृष्ठो की पुस्तक की कीमत 5 रुपये से 6 रुपये तक होती है। अभिभावक सिनेमा पर, आईस्क्रीम पर, कपडो पर पैसे खर्च करते है, लेकिन पुस्तको पर नही, क्योंकि वे पुस्तको को कपड़े और सिनेमा के समान आवश्यक तथा अनिवार्य नही मानते। अच्छी-अच्छी पुस्तके ग्राहको के बिना खराब हो जाती हैं। भारतीय भाषाओ मे बगला का अपवाद छोडकर बाल-पुस्तको की खपत बहुत कम है। मासिक पत्रिका, साप्ताहिकों द्वारा बच्चो को मन-पसद सामग्री मिलती है तो पुस्तकों की क्या आव-श्यकता है? दूसरा विचार है कि जब शालेय ग्रन्थालय में पुस्तकें मिलती हैं, फिर महंगी पुस्तकें क्यों खरीदें और कितनी खरीदें? मराठी में पाप्युलर

प्रकाशन, मेजेस्टिक प्रकाशन छुट्टियों में 'बाल-साहित्य जत्रा' का आयोजन करते है। इस पुस्तक मेले के अवसर पर बच्चे पुस्तको पर टूट पडते है। बच्चो की लुभावनी दृष्टि देखकर अभिभावक पुस्तके खरीदकर उन्हे देते है लेकिन यह बात उसी समय तक सीमित रहती है।

'मराठी बालकुमार साहित्य' सम्मेलन ने इसके लिए जो उपाय ढूँढा है वह है 'लक्षवाचक सघ' अर्थात् 'बुक क्लब'। मराठी के प्रसिद्ध लेखको से रचनाओ की माँग करके सिर्फ एक रुपये में 80 से 100 पृष्ठों तक की पुस्तक देने की यह योजना है। पाच हजार का सस्करण एक साल मे बिक जाता है। किसी दूकान मे यह पुस्तक मिलती नही। विद्यालयो मे कथा-कथन के कार्यक्रमो का आयोजन करके इन पुस्तको की बिक्री की जाती है। अब तक लक्षवाचक सघ की ओर से गुलब्या (ना० गो० शुक्ल) सिंह आणि छावे (सुधाकर प्रभु) इन दो पुस्तको का प्रकाशन हुआ है।

मराठी बाल-साहित्य के सभी विभाग आज फले-फूले है। सुबोधता, सुरूपता की दृष्टि से कई प्रयोग चल रहे है। पाठ्यपुस्तक मडल के द्वारा बाल-साहित्य की किसी विशेष प्रायोजना पर अनुदान दिया जाता है। बाल-साहित्य विषय लेकर मराठवाड़ा, पूना तथा शिवाजी विद्यापीठ मे प्रबन्ध की तैयारी छात्र कर रहे है। महाराष्ट्र शासन द्वारा हर साल कथा, कविता, जीवनी, बाल-नाट्य, छन्द, ऐसे पाच विभागो में एक-एक हजार के दो पुरस्कार प्रतिवर्ष विशेष सम्मान चिह्न के साथ विशेष समारोह में दिए जाते है।

बाल-साहित्य एक साधना है। दुर्भाग्य से बाल-साहित्य विषय जनता द्वारा हमेशा उपेक्षित रहा है। इस ओर आलोचना की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। साहित्य की अन्य विधाओं की तरह आलोचकों के द्वारा इस विधा की आलोचना भी समय-समय पर होती रहनी चाहिए। जिसके फल-स्वरूप बाल-साहित्य की भी कथावस्तु, साज-सज्जा, शैली आदि में पर्याप्त सुधार होगा। बालकों तथा किशोरो के व्यक्तित्व के विकास में ये पुस्तकें योगदान देगी। ऐसा बाल-साहित्य समाज का दर्पण होगा। उसका एकमात्र उद्देश्य मनोरजन ही नही होगा अपितु वह छात्रों की मानसिक भूख को मिटाकर उन्हे सदाचारी बनाने का प्रयास करेगा। वास्तविक स्थिति से अनभिज्ञ रखनेवाला, गलत मार्ग की ओर अग्रसर करने वाला बाल-साहित्य किस काम का है?

विष्णु शर्मा ने पंचतंत्र की कहानियाँ राजपुत्रों को विवेकशील बनाने के लिए कही। बाल-साहित्य का उद्देश्य इससे स्पष्ट हो जाता है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि सदाचार-सम्पन्न नई पीढी का निर्माण बाल-साहित्य के माध्यम से ही सम्भव है।

बाल-साहित्य का प्रचार-प्रसार बढ रहा है। भारतीय भाषाओं का सुन्दर बाल-साहित्य अनूदित होकर बच्चों के पास पहुँच रहा है। नेशनल बुक ट्रस्ट, नेहरू बाल-पुस्तकालय के प्रयत्न निश्चित ही सराहनीय हैं। समस्या यह है कि यह सुन्दर और सस्ता साहित्य देहात के बच्चे-बच्चे तक कैसे पहुँचेगा?

बालको को केवल बाल-साहित्य की सीमित परिधि मे बन्द रखकर उन्हें कूपमडूक बनाना उचित नहीं होगा। बाल-साहित्य के माध्यम से विश्व के अमर साहित्य का परिचय कराना भी बाल-साहित्य का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए। ससार के चिरस्थायी साहित्य में विद्यमान सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की कल्पना बालको के समक्ष प्रस्तुत करनी चाहिए। इस तरह बाल-साहित्य के माध्यम से विश्व के चिरंतन साहित्य का परिचय होना चाहिए। इससे बच्चों की उत्सुकता बढेगी, उनमें जिज्ञासा उत्पन्न होगी, वाचन की प्रवृत्ति बढेगी। वैचारिक दरिद्रता समाप्त होकर अन्तःकरण विशाल होगा। मेरे विचार से बाल-साहित्य की यह एक सबसे बडी उपलब्धि होगी। हम इन सदिच्छाओं के साथ आगे बढ़े। भविष्य उज्ज्वल है।

उर्दू का बाल-साहित्य

डा० सैफी प्रेमी

बच्चे खिलती कलियाँ और अनमोल मोती है, जिनके रग, महक और काति से किसी जाति मे जीवन का सचार होता है और राष्ट्र का इतिहास लिखा जाता है। प्रजातत्रीय देशों मे बच्चों को बहु-मूल्य दर्पण माना जाता है जिसमे एक अच्छे नागरिक का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। साम्यवादी देशो में बच्चों को किसी जाति की धरोहर और देश की प्रतिमूर्ति समझा जाता है।

हमारे देश मे प्राचीन काल से बच्चो के प्रति ममता और सहानुभूति की भावनाएँ रही हैं। आधु-निक युग मे नवीन शिक्षा ने बच्चो का सम्मान और महत्व को स्वीकारना भी सिखा दिया है। बच्चो के लिए पुस्तके लिखना एक चेतावनी है, एक सूक्ष्म कला है।

साधारणतया सभी बच्चो में निडरता, मनो-रंजनप्रियता, सहानुभूतिपरकता और उत्साह—ये विशेताएँ पाई जाती है। बच्चों के व्यक्तित्व में इन विशेषताओं को साधारण ज्ञान की पुस्तको के माध्यम से उद्भूत किया जा सकता है। उर्दू मे इस प्रकार के बाल-साहित्य की परम्परा प्राचीन काल से ही मिलती है। इस परम्परा मे नजीर अकबर आबादी का नाम सर्वप्रथम है। इनका जन्म 1736 मे दिल्ली में हुआ था। ये फारसी बहुत अच्छी जानते थे, साथ ही अरबी और हिन्दी भाषा का भी इन्हे अच्छा ज्ञान था। सन् 1880 मे लकवे की बीमारी से इनका देहान्त हुआ।

निजामी प्रेस बदायू से उनकी छ. कविताओ का संग्रह 'तिल के लड्डू' नाम से छपा था। इनके बाद उर्दू मे कुछ समय तक बालकाव्य नही लिखा गया। 1874 मे मौलाना मौहम्मद हुसैन आजाद और ख्वाजा अलताफ हुसैन हाली के प्रयत्नो के बाद फिर बाल-काव्य की रचना की जाने लगी। कहा जा सकता है कि इसी समय मे बालकाव्य की नींव पडी थी। मिस्र की पद्धति के स्थान पर कविता को छदबद्ध किया जाने लगा। मोहम्मद हुसैन आजाद की कवि-ताएँ—'शबे कद्र', 'हुब्बे वतन', 'अब्रे करम' और 'सुबहे उम्मीद' पजाब के कवि-सम्मेलन के लिखी गई थी। ख्वाजा हाली की कविताएँ 'बरखास्त', 'उम्मीद रहमे इन्साफ' और हुब्बे वतन भी पंजाब के कवि-सम्मेलन मे पढी गई थी।

वास्तविक रूप मे बच्चो का साहित्य मौलाना मौहम्मद इस्माईल मेरठी ने प्रस्तुत किया है। इन्होने पूरा जीवन बच्चो के लिए साहित्य लिखने मे ही उत्सर्ग कर दिया था। इन्होंने बच्चों के लिए पाठ्य-पुस्तके लिखने का श्रीगणेश किया, जो बहुत लाभ-कारी सिद्ध हुआ। इन्होने कविता, कहानी और लेख सभी प्रकार का साहित्य लिखा। यहाँ एक उदा-हरण प्रस्तुत है :—

"थोडा-थोडा बहुत हो जाता है"

बनाया चिडियो ने जो घोसला, सो एक-एक तिनका इकट्ठा किया
दरख्तों के झुण्ड और जगल घने, यही पत्ते-पत्ते से मिलकर बने
लगा दाने-दाने से गल्ले का ढेर, पडा लम्हे-लम्हे से बरसो का फेर
अगर थोडा-थोडा करो सुबह शाम
बडे से बड़ा काम भी हो तमाम ।।

'रेलगाडी,' 'नहर पर चल रही है पनचक्की' और 'गाय' उनकी प्रसिद्ध, रोचक और लाभदायक कविताएँ है । 'गाय' पर उनकी बहुत सुन्दर कविता है, इसमे 18 अध्याय हैं। इस कविता से एक उदाहरण प्रस्तुत है :

'रब का शुक्र अदा कर भाई, जिसने हमारी गाय बनाई
गाय को दी क्या अच्छी सूरत, खूबी की है गोया मूरत
दाना दुका भूसी चोकर, खा लेती है सब खुश होकर
खाकर तिनके और ठठेरे, दूध है देती शाम सवेरे
क्या ही गरीब और कैसी प्यारी सुबह हुई जगल को सिधारी
पानी पीकर चारा चरकर, शाम को आई अपने घर पर
दूरी में जो दिन है काटा, बच्चे को किस प्यार से चाटा
गाय हमारे हक मे है नेमत, दूध है देती खाके बनस्पत
बछड़े उसके बैल बनाए लो खेती के काम मे आए
रब की हम्दोसना कर भाई
जिसने ऐसी गाय बनाई ।।

बाल-साहित्य की कई पीढ़ियो पर मौलाना मेरठी का प्रभाव पड़ा है । उनका उर्दू बाल-साहित्य मे महत्वपूर्ण स्थान है।

डॉ० मोहम्मद इकबाल ने बच्चो के लिए कविताएँ लिखी है । 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा,' 'लब पे आती है दुआ बन के तमन्ना मेरी' ये कविताएँ प्रसिद्ध और सर्वप्रिय कविताएँ है ।

इनके अतिरिक्त 'जुगनू,' 'हिमालय,' 'नया शिवाला' बहुत सुन्दर और प्रभावशाली कविताएँ है।

हफीज जालन्धरी 1900 में पैदा हुए। इन्होने बच्चो के लिए अनेक गीत, कविताएँ और कहानियाँ लिखी है। उनकी 'बहार के फूल' और 'फूलमाला' पुस्तके बहुत सुन्दर और प्रसिद्ध हैं । मजूम तारीखी की कहानिया का सग्रह 'हिन्दुस्तान हमारा' के नाम से छपा हुआ है। उनकी कविता 'कबड्डी' का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

अगर खेल मे साँस टूटा किसी का
फिर उस पर अगर हाथ छूटा किसी का
तो समझो कि अब खेल से कट गया वह
अलग जाके बैठा, परे हट गया वह
उठा कहके फिर दूसरा चल कबड्डी
चलाचल कबड्डी, चलाचल कबड्डी ।।"

मुशी तिलोक चन्द महरूम 1887 में पैदा हुए और 1966 मे उनका देहान्त हुआ । इनका बाल-साहित्य के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण स्थान है । इन्होने अग्रेजी कविताओ का उर्दू मे अनुवाद किया है। उनकी पुस्तक 'गजेमआनी' नाम से छपी हुई है। ये बच्चों की प्रकृति और उनकी बुद्धि से भली-भाँति परिचित थे। उनकी काव्य-पुस्तक 'बहारे तिफली' बहुत प्रसिद्ध है। उनकी कविताए पाठ्यक्रम मे लगी हुई है।

इसी प्रकार मौलवी मौहम्मद शफीउद्दीन नैयर ने अपना पूरा जीवन बच्चो का साहित्य लिखने मे बिता दिया। इन्होंने छ. से चौदह वर्ष तक के बच्चों के लिए पुस्तको के चार सैट तैयार किए थे। इनकी लगभग तीस पुस्तके है। बच्चे उनकी पुस्तके बहुत रुचि से पढ़ते है। उनकी कविता 'बदरवाला' से उदाहरण देखिए —

"डुग-डुग-डुग-डुग करता आया, बंदरवाला बंदर लाया
हाथ मे एक मोटा-सा डडा, डडे मे एक लाल-सा झडा
बंदर के साथ एक बदरिया, पहने हुए एक लाल घघरिया
देखकर कुछ लोगों का जमघट उसने खेल जमाया झटपट
लेकर डडा रखकर झोला, बदर बाला हँसकर बोला
नाचो बेटा नाचो बेटा, बदर ने भी जिस्म समेटा
अपने दोनो हाथ उठाकर, गर्दन और कूल्हे मटका कर
झिझका और न कुछ शरमाया, थिरक-थिरक कर नाच दिखाया।"

हामिद उल्ला अफसर मेरठी 1898 मे पैदा हुए थे। ये बच्चो के प्रतिष्ठित शायर है। 'नीद की परिया, 'लाला जी की टोपी' 'निंदिया पुर' और 'विज्ञान की दुआ' इनकी सुन्दर कविताएँ है। इन्होंने देशभक्तिपरक कविताएँ लिखी है। इनकी चाद कविता का उदाहरण द्रष्टव्य है।

"तुम नदी पार जाकर देखो, जब नदी मे नहाए चांद
डुबकी लगाये गोता खाये, डर है डूब न जाए चाँद
किरनों की इक साडी लेकर, छम-छम उतरा आए चाँद
झूले मे पानी की लहरो के, क्या-क्या पेग बढ़ाए चाँद
जब तुम उसको पकड़ने जाओ, बादल मे छुप जाए चाँद।"

इस पीढ़ी के कवियो मे महवी सिद्की लखनवी का नाम महत्वपूर्ण है। उन्होंने बच्चों के लिए बहुत कुछ लिखा है, जो भी लिखा है उसका उर्दू साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। 1891 मे पैदा हुए और 1975 मे इनका देहान्त हुआ। इनकी पुस्तक 'बालक बाग' को बच्चे बहुत पसन्द करते है।

इम्तियाज़ अली ताज ने अंग्रेजी कहानियो का अनुवाद किया है। ये कहानियां 'चाचा छक्कन' की कहानियाँ नाम से छपी है।

उर्दू बाल-साहित्य मे विविधता है। उर्दू मे लोरियो की पुस्तकें भी लिखी गई है। एक पुस्तक का नाम 'आगोश मादर' है। इसके लेखक सैयद कखदूम आलम मारहरवी है। 'जो सोए सो खोए' लोरी से उदाहरण देखिए—

"पूत मिरा कब रोए, हँसी खुशी मुँह धोए
आंखो नूर बरसाए, पलको मोती पिरोए
पाए वह जो जागे, जो सोए वह खोए।"

लोरियों की पुस्तकें है—मिस इ, इ वानर', 'मिस ईश ब्रुक' इनमे बहुत सुन्दर लोरियाँ है, इनमे जिन्दादिल माँ की सच्ची आवाज सुनाई देती है। इस पुस्तको में छ. लोरियां है। कुछ उदाहरण देखिए—

"छै छै पैसे
दो दो आने
जबलपुर के छै छै पैसे
कलकत्ता के दो दो आने"

'खेलतमाशा' पुस्तक इडियन प्रेस लिमिटेड इलाहाबाद से 1929 मे छपी थी। इस पुस्तक मे शिक्षा और मनोरजन दोनो बातो का ध्यान रखा गया है। इसमे चित्र है और छोटी-छोटी कहानियाँ है। आश्चर्य यह है कि चुटकुले भी कविता में है। कविताएँ भी है। 'रूठा शहजादा' और मनचली' अच्छी कविताएँ है। एक चुटकुला 'बेवकूफ लड़का' बहुत रोचक है।

'बयाजेगुल' कैस की एक पुस्तक हमदिया आर्ट प्रेस भोपाल से छपी थी। इसमे छोटे-छोटे बच्चो के लिए अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद मिलते है। 'जेबी घडी', 'बच्चा और चिराग', 'माँ की ममता', 'दुम कटी लोमडी' अच्छी और सुन्दर कविताएँ हैं।

डॉ० जाकिर हुसैन ने बच्चो के लिए नाटक,

कहानियाँ और निबन्ध लिखे हैं। 'मुर्गी अजमेर चली' 'उकाब' 'दयानत' 'अब्बू खां की बकरी' उनकी प्रसिद्ध, रोचक और शिक्षाप्रद पुस्तके है।

प्रो० मुहम्मद मुजीब ने बच्चों के लिए नाटक और कहानियाँ लिखी है। 'आओ ड्रामा करे' उर्दू मे अपनी किस्म की पहली पुस्तक है। यह पुस्तक नाटक शैली और सरल भाषा में लिखी गई है।' 'शीदला' एक निखट्टू और बेवकूफ की दिलचस्प कहानी है। इसकी विषय-वस्तु बहुत मनोरजक है।

डॉ० आबिद हुसैन को बच्चो की शिक्षा और उनके पालन पोषण में बहुत रुचि है। इनकी पुस्तके बाल-मनोविज्ञान को आधार बनाकर लिखी गई है। उन्होने बच्चो का आचार-व्यवहार सुधारने के लिए अच्छी शिक्षाप्रद बाते अपनी पुस्तको मे कही है।

कृष्णचन्द्र महान उपन्यासकार है। बाल-साहित्य के क्षेत्र मे भी उनकी बडी देन है। 'सितारो की सैर और चिड़ियों की अल्फलैला' उनकी प्रसिद्ध पुस्तके हैं। उर्दू के प्रसिद्ध शायर जगन्नाथ आजाद ने बच्चो के लिए रेडियो फीचर लिखे हे। इन्होंने कविताएँ और नाटक भी लिखे है। 'हिन्दुस्तान हमारा' और 'बंगाल का जादू' उनकी उल्लेखनीय पुस्तके है।

केशव कुमार ने पंचतन्त्र की कहानियो को चार भागो मे सीमित करके छापा है। इलयास अहमद मुजीबी और अब्दुल वाहिद सिंधी की किताबे बड़े शौक से पढ़ी जाती है। मुजीबी की 'नसीब खुले फूल खिले,' 'गुलनार बेगम' पुस्तके है। सिन्धी की 'रोटी किसने पकाई', 'पाँच बोने,' 'च्यूटी रानी, 'पकड़ दुम कटे को' तथा 'ताक दनादन ताके से' बहुत प्रसिद्ध पुस्तके है।

तरक्कीय उर्दू बोर्ड ने बच्चो के लिए सुन्दर और अच्छी पुस्तके लिखी है। इन्होने अंग्रेजी कहानियों के अनुवाद भी छापे है। डॉ० अतहर परवेज की मुख्य किताबे है—'देश-विदेश की कहानियाँ,' 'एक दिन का बादशाह,' 'एक नाई और रंगसाज का किस्सा,' 'मशीनी घोड़ा' आदि। डॉ० नुरुल हसन नकवी ने 'हातिमताई का किस्सा' पुस्तक लिखी है। मुहम्मद नदीम की 'तीसमारखा के कारनामे', 'अक्ल मन्द मछेरा' और राबिन्सन क्रूसो पुस्तके है। गुलाम हैदर की 'पैसे की कहानी' और कथ को कहानी रोचक और ज्ञानदायी पुस्तके है। राजनारायण राज की 'फुटबाल की कहानी' उत्तम और शिक्षाप्रद है।

नेशनल बुक ट्रस्ट ने बच्चों के लिए काफी सख्या मे अनूदित पुस्तके छापी हैं। कमाल हुसैन की 'आजादी की कहानियाँ,' 'फूल और शहद की मक्खी' 'सब का साथी सब का दोस्त' 'हिन्दुस्तान ने आजादी कैसे हासिल की' आदि पुस्तके काफी अच्छी है।

डॉ० सैफी प्रेमी ने बच्चो के लिए 'हमारे मुहावरे' 'कहावत और कहानी' दो पुस्तके लिखी है। इनमे कहावतो को एकत्र करके उनकी मूल कहानियो को भी सरल भाषा म दिया गया है, जिससे ये कहावते बनी है। उर्दू मे इस प्रकार की कोई अन्य पुस्तक नहीं है।

उर्दु के बाल-साहित्य मे महिलाओ को बहुत सम्मान दिया गया है। मुआलिहा आबिद हुसैन ने 'एक देश एक खून,' 'सुन्दर चनार', 'जादू का हरन', 'सुनहरे बालो के बच्चा का देश' पुस्तके लिखी है। बेगम कुदसिया जैदी की 'अनथक जान' पुस्तक चित्रों के साथ छपी हुई है। 'भिन-भिन बानो' (शहद की मक्खी)' जावाज सिपाही (दीमक) बहुत मनोरजक कहानियाँ है।

कुर्रतुलेन हैदर ने बच्चो के लिए 'शेर खां,' 'भेड़िये के बच्चे' 'मियाँ ढेंचू के बच्चे' 'लोमड़ी के बच्चे' 'बहादुर' 'जगल का राजा' पुस्तकें लिखी है। ये सभी पुस्तके दूसरी भाषाओ की पुस्तको का अनुवाद है। रजिया सज्जाद जहीर के अनुवादो म 'हमारी नदियो की कहानी', 'जन्नत की सैर' 'बहुत दिन हुए' आदि हैं।

फैयाज हुसैन जामियी ने बच्चो के लिए मनोरजक और शिक्षाप्रद ताश आरम्भ किए। प्रस्तुत खेल से अक्षरो की पहचान, शब्दो की बनावट और उनके अर्थों का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

इस प्रकार बच्चों के साहित्य मे कविताएँ, नाटक, कहानियाँ, शैक्षिक निबन्ध, ऐतिहासिक कारनामे, अक्षर-ज्ञान की पुस्तके, लोरियाँ, पहेलियाँ कव्वाली, चुटकले सभी कुछ उपलब्ध है।

मकतबा जामिया, तरक्कीय उर्दू बोर्ड, नेशनल बुक ट्रस्ट, अन्जुमन तरक्कीये उर्दू, ऐसी सस्थाएँ है जो बच्चों के लिए लाभदायक और सुन्दर पुस्तके निकालती है।

उर्दू की महत्वपूर्ण पत्रिकाएँ इस प्रकार है—'पयामे तालीम' जामिया नई दिल्ली से निकलता है। दफ्तर शमा दिल्ली से 'खिलौना' पत्रिका निकलती है जो रंगीन पत्रिका है। इसमे सुन्दर-सुन्दर चित्र होते है। बिजनौर से 'गुनचा' और लखनऊ से 'कलियाँ' और 'टाफी' पत्रिकाएँ छपती है। रामपुर से 'नूर' पत्रिका निकलती है। प्रकाशन के इतने प्रयास होने के बावजूद भी अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है।

(1) उर्दू मे डायरी और रिपोर्ताज मे वृद्धि की जाए।

(2) अभी पत्रिकाओं की कमी है। रगीन और सचित्र पत्रिकाएँ अधिक निकाली जाएँ।

(3) पुस्तको का 'गेटअप' अच्छा होना चाहिए, उनकी कम कीमत रखी जानी चाहिए।

(4) पुस्तको और पत्रिकाओ मे कस्बो और गावो के जीवन की झाकी भी दिखानी चाहिए।

(5) विज्ञान पर बल दिया जाना चाहिए।

अभी तक जिनकी लेखनी ने भी बाल-साहित्य में वृद्धि की है वह सभी सम्मान योग्य है। अब तो केवल चिराग की लौ को और तेज करने की जरूरत है।

भाग—तीन

बाल-साहित्य : मूल्यॉकन प्रपत्र और निर्देश

भूमिका

बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की पूर्ति एवं उसके सर्वांगीण विकास के लिए बाल-साहित्य की आवश्यकता असदिग्ध है। यह साहित्य बालक के लिए ज्ञान के विभिन्न आयाम खोजता है और उसके मस्तिष्क के झरोखे को उसके चारो ओर विकीर्ण ज्ञान एव पर्यावरण की ओर खोलता है। इस प्रकार इस साहित्य के माध्यम से वह सभी प्रकार का ज्ञान जो उसके मानसिक विकास मे सहायक होता है, उपलब्ध होता है।

गत चार-पॉच दर्शको मे भारत में सभी भाषाओ मे बाल-साहित्य की बाढ सी आ गई है। प्रबुद्ध साहित्य लिखने वाले लेखक भी बालको के लिए साहित्य रच रहे है। अत कहीं किसी प्रकार से भी बाल-साहित्य का अभाव परिलक्षित नही होता। किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि जो बाल-साहित्य आज उपलब्ध है क्या वह बालको की वाछनीय आवश्यकताओ की पूर्ति करता है ? क्या वह बालको मे उन जीवन मूल्यों को उद्घाटित करता है जिनकी मानव जाति को आवश्यकता है ? इन्ही और इन जैसे ही कतिपय अनिवार्य प्रश्नो को दृष्टि मे रखते हुए बाल-साहित्य के मूल्याकन की आवश्यकता है। इस मूल्याकन हेतु एक मूल्याकन प्रपत्र तैयार किया गया है। इस मूल्यांकन प्रपत्र के तीन भाग है। पहले भाग मे पुस्तक से संबधित सामान्य जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। दूसरे भाग का उद्देश्य पुस्तक के कथ्य, प्रस्तुतीकरण एव उसके भौतिक पक्ष से सबधित सूचना एकत्र करना है। तीसरे भाग मे दूसरे भाग की जानकारी के आधार पर पुस्तक का मूल्याकन करवाया गया है। मूल्याकन प्रपत्र को सही प्रकार से समझने एवं उसे भरने के लिए कुछ निर्देश दिए जा रहे हैं। मूल्यांकनकर्ता पुस्तको का मूल्याकन करते समय इन निर्देशो को अपनी दृष्टि में रखें।

भाग-1

(अ०) सामान्य सूचनाएँ

इस स्तम्भ के अन्तर्गत मूल्यांकनकर्ता पुस्तक से संबंधित निम्नलिखित सूचनाएँ दें—

1 पुस्तक का शीर्षक क्या है ?
2. पुस्तक मौलिक है तो उसके लेखक का नाम क्या है ? यदि सपादित है तो सपादक का नाम क्या है ?
3. पुस्तक किस भाषा मे लिखी गई है ?
4. पुस्तक मौलिक है, अनूदित है या संपादित ?
5. पुस्तक यदि अनूदित है तो अनुवादक का नाम क्या है ? यदि रूपान्तरित है तो रूपातरकार का नाम क्या है ?
6. यदि पुस्तक किसी पुस्तकमाला के अन्तर्गत लिखी गई है तो पुस्तकमाला का नाम क्या है ?
7. पुस्तक का प्रकाशन वर्ष क्या है ?
8. पुस्तक का मूल्य क्या है ?
9. पुस्तक का प्रस्तुत सस्करण कौन सा है ?
10. पुस्तक सचित्र है या चित्र रहित ?
11. पुस्तक में कुल कितने पृष्ठ है ?
12. पुस्तक कहाँ से प्रकाशित हुई है ? प्रकाशक का पूरा पता क्या है ?

टिप्पणी : जहाँ दो, तीन विकल्प दिए गए हैं वहाँ पुस्तक के अनुसार किसी एक पर सही का (√) चिन्ह लगाये, उससे सबंधित सूचना आगे दी गई जगह मे लिखे, शेष विकल्पों को काट दे।

भाग-2

(आ०) विशिष्ट सूचनाएँ

बाल-साहित्य के अनेकानेक विषय हो सकते है। विविध विषयों की एक सूची 'मूल्याकनकर्ता प्रपत्र' मे दी गई है। मूल्याकनकर्त्ता इन विषयो के परस्पर अन्तर को समझते हुए पुस्तक के विषय के अनुरूप दिये गये स्थान पर सही ($\surd$) का चिन्ह लगाये। सम्भव है कि एक ही पुस्तक मे दो विषयो की चर्चा हो। उदाहरणार्थ, पुस्तक पशु-पक्षियो के सबध मे कुछ जानकारी देती है, साथ ही उसमे वीरता और साहस की बातें भी है। ऐसी स्थिति मे जिस विषय की प्रधानता हो उसे ही पुस्तक का मूल विषय माना जाएगा और केवल उसी के आगे ($\surd$) का चिन्ह लगेगा।

मूल्याकन प्रपत्र मे दिये गये विषयो का स्पष्टीकरण के लिए एव उनमे से कुछ के परस्पर अन्तर को समझने के लिए कुछ बातें यहाँ बताई जा रही है—

लोकसाहित्य

वह साहित्य है जो किसी एक व्यक्ति की गढी मौखिक अभिव्यक्ति होते हुए भी सामान्य लोक-समूह का होता है। जिसका प्रत्येक शब्द, प्रत्येक स्वर, प्रत्येक लय 'लोक' का अपना है और उसके लिए अत्यन्त सहज और स्वाभाविक है।

वीरता और साहस

असाधारण कार्य को कर डालने की क्षमता, साहस और वीरता का परिचायक है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के युद्ध का वर्णन, अभिमन्यु का चक्र-व्यूह में प्रवेश और भेदन का प्रयास, तेनसिंह की एवरेस्ट पर चढाई आदि विषयक पुस्तके बच्चों मे साहस और शौर्य का संचार करती है। ऐसी पुस्तको को 'वीरता और साहस' वर्ग मे रखेगे।

पौराणिक/धार्मिक

भागवत पुराण, स्कध पुराण आदि हमारे विविध पुराण है। इन पुराणो से कथा प्रसंग लेकर यदि कोई रचना लिखी गई है तो वह पौराणिक के अन्तर्गत आएगी। उपनिषदों और जातकों आदि से ली गई कथाए भी इसी के अन्तर्गत आएगी।

धर्म से संबधित विषयो जैसे—ईश्वर की सत्ता, मूर्ति-पूजा, कर्म-काड आदि को आधार बनाकर लिखी गई पुस्तके अथवा धर्म विशेष के सिद्धान्तो का निरूपण करने वाली कृति 'धार्मिक' कही जाएगी।

यात्रा-वर्णन

देश विशेष या स्थान विशेष की जानकारी देने के लिए यात्रा-वर्णन लिखे जाते है। इनमे विभिन्न दर्शनीय, ऐतिहासिक एवं सौन्दर्यपूर्ण स्थलो का रोचक ढग से वर्णन होता है।

अन्वेषण

जहाँ व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति, साहस, शौर्य आदि के बल पर किसी नई चीज की खोज करता है वह अन्वेषण के अन्तर्गत आएगी। वास्कोडिगामा द्वारा अमेरिका की खोज एक अन्वेषण है।

मनोरंजन

शुद्ध मनोरंजन की दृष्टि से लिखी गई रचनाएं जैसे परियों की कहानियाँ, दैत्यो की कहानियाँ तथा बीरबल-अकबर के चुटकले आदि 'मनोरजन' शीर्षक के अन्तर्गत आयेगे।

सामाजिक/सांस्कृतिक

समाज के रहन-सहन, पद्धति और रीति-नीति से सम्बद्ध रचनाएं सामाजिक होंगी। किसी भी देश या प्रदेश की सस्कृति को उद्घाटित करने वाली कृति सांस्कृतिक कहलाएगी। जहाँ सभ्यता का सबध समाज के बाह्य पक्ष से होता है वहाँ सस्कृति का संबंध समाज के आन्तरिक पक्ष अर्थात् आचार-विचार से होता है।

ऐतिहासिक/भौगोलिक

जिस पुस्तक मे देश-विदेश के इतिहास से सबधित विषय लिये गये हों, उसे 'ऐतिहासिक' मे रखेगे। जिस कृति में देश विदेश अपना स्थान विशेष की भौगोलिक स्थिति, जलवायु रहन-सहन, खान-पान आदि का वर्णन किया गया हो वह 'भोगौलिक' शीर्षक के अन्तर्गत रखी जाएगी।

नागरिकता

जिस पुस्तक में किसी देश के सविधान के गठन, उसके नियमो, देश के नागरिकों के अधिकार और कर्तव्य, न्याय-व्यवस्था आदि का वर्णन हो, उसे 'नागरिकता' शीर्षक मे रखेगे।

अर्थशास्त्रीय

देश-विदेश की आर्थिक परिस्थितियो, अर्थ-नीति आदि पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक 'अर्थ-शास्त्रीय' वर्ग में रखी जाएगी। अर्थशास्त्रीय सैद्धान्तिक चर्चा पर आधारित पुस्तक भी इसी वर्ग के अन्तर्गत आएगी।

जीवनी

महापुरुषों के जीवन पर आधारित पुस्तकें 'जीवनी' के अन्तर्गत आयेगी।

कला

चित्र कला, वस्तु कला, सगीत कला, आदि विविध कलाओ से सम्बद्ध जानकारी देने वाली कृतियाँ 'कला' शीर्षक में रखे।

विज्ञान और प्राद्योगिकी

विज्ञान के क्षेत्र में की गई मानव की उपलब्धियां आज जीवन मे चारो ओर देखी जा सकती हैं। रेडियो, टेलीफोन, टेलीविजन से लेकर राकेट और स्काईलैब तक सभी प्रकार की वैज्ञानिक उपलब्धिया हैं। इन सभी प्रकार की वैज्ञानिक वस्तुओ और अनुसधानों आदि पर प्रकाश डालने वाला साहित्य इसके अन्तर्गत रखा जाएगा।

खेलकूद

राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय खेलों का परिचय, किसी खेल विशेष के विषय में जानकारी, खेलकूद के महत्व आदि पर प्रकाश डालने वाली पुस्तक 'खेलकूद' शीर्षक में आयेगी।

हास्य व्यंग्य

जिस पुस्तक मे बच्चों के मनोरंजनार्थ अथवा किसी अन्य गम्भीर उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी आद्यान्त हास्य और व्यग्य का ही सहारा लिया गया हो उसे हास्य-व्यग्य प्रधान पुस्तक कहा जाएगा।

पशु-पक्षी

पशु-पक्षियो के रहन-सहन, खान-पान की जानकारी देने वाली पुस्तके अथवा उन पर गढी गई काल्पनिक कहानियो की पुस्तके 'पशु-पक्षी' वर्ग मे रखी जाएगी।

राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय

जिस पुस्तक मे देश-भक्ति, राष्ट्रीय मूल्यो, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रप्रेम आदि पर प्रकाश डाला गया हो वह 'राष्ट्रीय' के अन्तर्गत और जिस पुस्तक में इनके विशद रूप अर्थात अन्तर्राष्ट्रीय एकता एव सामान्य जीवन मूल्यो पर प्रकाश डाला गया हो वह 'अन्तर्राष्ट्रीय' के अन्तर्गत आएगी।

टिप्पणी : मूल्याकन प्रपत्र मे दी गई विषय सूची के अन्तर्गत यदि किसी पुस्तक को नही लिया जा सकता हो तो उसे 'अन्य' के अन्तर्गत लिखें। किन्तु इतना अवश्य लिखे कि आप उसे किस विषय से सम्बद्ध मानते है अर्थात उसके विषय का स्पष्टीकरण करें।

प्रस्तुतीकरण की विधा

विषय अथवा कथ्य चाहे पौराणिक हो या धार्मिक, सामाजिक हो या सास्कृतिक, राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय, साहित्यकार उसे किसी न किसी रूप में सजो कर ही हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। कोई उसे कविता का बाना पहनाता है तो कोई कहानी का। कोई उसे नाटक का रूप देता है तो कोई निबन्ध का। वस्तुत: कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास आदि साहित्य की ही विविध विधाएँ हैं। निस्सदेह ये सभी स्वतंत्र विधाएँ है किन्तु इनमे से कुछ मे इतना सूक्ष्म भेद है कि वे एक सी जान पडती है। प्रस्तुतीकरण की विभिन्न विधाओं मे परस्पर अन्तर को समझने के लिए यहाँ उनके स्वरूप पर अत्यन्त सक्षेप मे प्रकाश डाला गया है।

कहानी

कहानी, साहित्य का वह गद्य रूप है जिसमे जीवन के किसी एक अग या किसी एक मनोभाव या घटना को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश्य रहता है।

निबन्ध

निबन्ध, किसी एक विषय पर क्रमबद्ध रचना है। इसमें विषय की एकता और मर्यादा आवश्यक है। तारतम्य अनिवार्य है। निबन्ध स्वत: पूर्ण और सगठित रचना होती है। निवन्ध मे लेखक का व्यक्तित्व सजीव रूप मे रहता है। इसी से 'निबन्ध' 'लेख' से भिन्न होता है।

निबन्ध और कहानी में अन्तर

निबन्ध और कहानी दोनो मे ही एक ध्येयता होती है। दोनों एक विषय या लक्ष्य को लेकर चलते हैं, फिर भी दोनों में अन्तर है।

कहानी की घटनाओ मे गत्यात्मकता होती है। घटनाएँ अबाध गति से आगे बढती है। निबन्ध में एक ठहराव होता है। विवेचन, विश्लेषण, चिन्तन, विमर्श और निरीक्षण की सम्भावना रहती है।

कविता/काव्य

काव्य में जहाँ रचना के भावपक्ष और अन्त सौन्दर्य का अधिक बोध होता है वहाँ कविता शब्द के प्रयोग से उसके कलापक्ष और रूपात्मक सौन्दर्य को प्रधानता मिलती है।

कविता शब्द का प्रयोग आकार में छोटे ऐसे पद्य विशेष के लिये किया जाता है जो गीति, प्रगीति या मुक्तक के अनेकानेक प्रकारो मे से किसी एक रूप में रचा गया है। काव्य के अन्तर्गत महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तक काव्य सभी का समावेश हो जाता है। इस तरह कविता को काव्य का एक रूप कहा जा सकता है।

नाटक/एकाँकी

एकाँकी और नाटक साहित्य की दो स्वतन्त्र विधाएँ है। इनमें परस्पर लगभग वही सम्बन्ध है जो कहानी और उपन्यास मे है।

नाटको मे जीवन का विस्तार, लम्बाई और परिधि का विस्तार होता है। एकाँकी का क्षेत्र सीमित, परिधि सकुचित होती है।

एकाँकी मे एक अक होता है, एक ही कथा होती है। नाटक मे अनेक अक होते है। उसमे एक मुख्य कथा के साथ-साथ प्रासगिक कथाएँ भी जुड़ी होती है।

एकाँकी मे सवाद साँकेतिकता लिये होते हैं। नाटक मे चरित्र के उतार-चढाव के अवसर अधिक होते है। एकाँकी मे भी चरित्र का उतार चढ़ाव या द्वन्द्व होता है किन्तु वह पात्र के सम्पूर्ण जीवन के परिवेश में नहीं घटता।

वार्तालाप

वार्तालाप, कहानी, नाटक, एकाँकी, निबन्ध आदि से भिन्न साहित्य की एक अन्य विधा है। वार्तालाप को सवाद या कथोपकथन का पर्याय मान लिया जाए तो इसे कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाँकी के अन्तर्गत ही समाविष्ट कर लिया जाएगा। किन्तु ऐसा नहीं है। 'वार्तालाप' स्वयं मे एक स्वतत्र विधा है। जिसमे दो या दो से अधिक व्यक्तियों के बीच की बातचीत को एक विशेष क्रम में सजाया जाता है। रचनाकार के अपने निजी वक्तव्य इस बातचीत मे नही आते। 'वार्तालाप' मे वर्तमान काल का प्रयोग होता है। अत· पाठको को सब कुछ आँखो के सामने तीव्र गति से घटता प्रतीत होता है। कार्य-कारण में अत्यन्त निकटता होने के कारण स्वाभाविकता बनी रहती है।

उपन्यास

उपन्यास, कार्य-कारण शृंखला में बधा वह गद्य कथानक है जिसमें विस्तार से वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों से सम्बन्धित वास्तविक-काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का उद्‌घाटन किया जाता है।

जीवनी/आत्मकथा

श्रद्धा भाव से प्रेरित होकर जब कोई लेखक किसी महान व्यक्ति की, चाहे वह किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित हो, जीवन कथा लिखे तो वह 'जीवनी' है। 'जीवनी' लिखने का उद्देश्य यह प्रेरणा देना है कि हम महान चरित्रो के चरण चिन्हों पर चलकर अपने जीवन को उत्कृष्ट बना सकते हैं।

जब लेखक अपनी जीवनी स्वयं लिखे तो वह 'आत्मकथा' है। 'जीवनी' दूसरे के द्वारा लिखी जाती है, 'आत्मकथा' स्वय लेखक द्वारा। आत्मकथा मे वर्णित प्रत्येक घटना जीवनी में वर्णित घटना से अधिक विश्वसनीय होती है क्योंकि घटनाओं के बीच सांस लेने वाला व्यक्ति ही उसे लिपिबद्ध करता है।

रिपोर्ताज

वस्तुस्थिति के प्रत्यक्ष निरीक्षण के आधार पर कलात्मकता से उसे शब्दो में पिरो कर प्रस्तुत करना रिपोर्ताज लेखक का काम है। 'रिपोर्ताज' में तीन बातें मुख्य होती हैं।

(1) घटना का इतिहास और परिवेश
(2) घटना मे भाग लेने वाले चरित्रों की गतिविधि
(3) भविष्य की आशाओ का स्पष्टीकरण

संस्मरण

स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के सम्बन्ध मे लिखित लेख 'संस्मरण' है। 'सस्मरण' मे लेखक की स्मृति बिजली की तरह कौंधती प्रतीत होती है। उसकी झलक मे जो घटनाएँ, व्यक्ति, प्रसग या मन स्थिति सामने आती है, लेखक उन्हीं का चित्रण करता है। 'सस्मरण,' 'आत्मकथा' से इसीलिए भिन्न है। आत्मकथा मे घटनाओ को उसी क्रम मे सजाना पडता है जिस क्रम मे जीवन में घटी है। सस्मरण मे घटनाओ को चमकाने का भाव है जबकि आत्मकथा मे विश्वसनीयता की माँग अधिक होती है।

टिप्पणी· मूल्याकन प्रपत्र में दी गई प्रस्तुतीकरण की कुछ प्रमुख विधाओं में यदि कोई रचना समाहित नही की जा सकती तो समीक्षक उसे 'अन्य' के अन्तर्गत रखे। 'अन्य' शीर्षक में उसे रखते हुये विधा का उल्लेख अवश्य करे जैसे वह रेखाचित्र है या मोनोलॉग, शब्दचित्र है या लघुकथा, डायरी है या पत्र।

बाल-साहित्य मूल्यांकन के पक्ष एवं निकष बिन्दु

(इ) विषयवस्तु

पक्ष	निकष बिन्दु
कथावस्तु	
(1) पुस्तक का कथ्य ऐसा होना चाहिए जो राष्ट्रीय और शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करे।	(1) क्या कथावस्तु बालकों की आयु के अनुकूल है ?
(2) बच्चो की रुचि और आयु के अनुकूल हो।	(2) क्या वह बच्चो के व्यक्तित्व के विकास मे सहायक है ?
(3) तथ्य सही हो।	(3) क्या दिये गये तथ्य सही और उपयुक्त है ?
	(4) क्या कथावस्तु राष्ट्रीय और शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करने मे सहायक है ?
	(5) क्या कथावस्तु में मौलिक विचारो का निरूपण है ?
सामग्री का गठन	
(1) सामग्री का गठन इस रूप में किया जाना चाहिए कि उसमे एकरूपता बनी रहे।	(1) क्या पठन सामग्री में क्रमबद्धता है ?
(2) विषय के सभी पक्षो में सतुलन बना रहे।	(2) क्या दिए गए तथ्यो, घटनाओ आदि मे परस्पर सम्बन्ध सूत्र है ?
(3) विभिन्न तथ्य एव घटनाए आपस में गुम्फित हों।	(3) क्या विषय के आदि, मध्य और अन्त में एक सन्तुलन है ?
प्रस्तुतीकरण	
(1) विषय का प्रस्तुतीकरण ही किसी रचना मे प्राण डालता है। अतः वह जितना अधिक मौलिक, कथ्य से सम्बद्ध और रोचक होगा, रचना उतनी ही अधिक प्रभावशाली होगी।	(1) क्या सामग्री को प्रस्तुत करने का ढंग रोचक है ?
	(2) क्या वह बच्चो के स्तर के अनुरूप है ?
	(3) क्या वह विधा के अनुकूल है ?
	(4) बच्चों की रुचि बनाये रखने में सहायक है ?
	(5) क्या उससे बच्चो की कल्पनाशीलता और सृजनशीलता को प्रोत्साहन मिलता है ?
	(6) शैक्षिक एव राष्ट्रीय मूल्य आरोपिता से तो नहीं प्रतीत होते ?

भाषा शैली

(1) शुद्धता और सरलता भाषा के आवश्यक गुण हैं।
(2) यदि भाषा विषय, पात्र और वातावरण के अनुरूप है तो उसका प्रभाव असंदिग्ध है।
(3) शैली की सहजता, सरलता और प्रवाहमयता विषयवस्तु को रोचक बनाने मे सहायक सिद्ध होती है।

(1) भाषा व्याकरण आदि के दोषो से मुक्त, शुद्ध है ?
(2) क्या भाषा सरल और बच्चो के स्तर के अनुकूल है ?
(3) क्या भाषा विषय, पात्र और वातावरण आदि के उपयुक्त है ?
(4) क्या शैली उबऊ न होकर सरस है ?
(5) उसमे सहजता और स्वाभाविकता है ?
(6) क्या शैली मे एक प्रवाह विद्यमान है ?

चित्र सज्जा

'चित्र' पुस्तक की पठन सामग्री के सहायक अंग होते हैं। वे बालको की जिज्ञासा वृत्ति को शांत करते हैं और विषय को स्पष्ट करते हैं।

(1) क्या कथ्य के प्रस्तुतीकरण के लिए चित्र पर्याप्त हैं ?
(2) क्या चित्र कथ्य के अनुरूप और उसकी अपेक्षित व्याख्या में सहायक हैं ?
(3) क्या चित्र केवल साज-सज्जा के लिए ही न होकर एक विशिष्ट उद्देश्य लिए हुए है ?
(4) क्या चित्र बच्चों की जिज्ञासा वृद्धि मे सहायक हैं ?
(5) क्या चित्रों में कल्पनात्मकता है ?
(6) क्या चित्र पुस्तक में दी गई पठन-सामग्री का एक महत्वपूर्ण अंश लगते हैं ?

टिप्पणी

विषयवस्तु के अंतर्गत प्रत्येक तालिका में तीन स्तम्भ हैं—अति उत्तम, उत्तम और निम्न। मूल्यांकनकर्ता निकष बिन्दुओ को ध्यान में रखते हुए उनके आगे दिये गये स्थान मे सही (√) का चिह्न लगाये।

(ई) भौतिक पक्ष

पुस्तक का आकार

बालक पुस्तक को सरलता से प्रयोग कर सके।

(1) क्या पुस्तक का आकार आयुवर्ग के अनुकूल है ?
(2) क्या पुस्तक बच्चो की आयु के अनुसार उपयोग करने मे सरल है ?

आवरण पृष्ठ

आवरण पृष्ठ का आकर्षक और कथ्य के अनुरूप होना अत्यन्त आवश्यक है।

(1) क्या आवरण पृष्ठ आकर्षक है ?
(2) क्या वह पुस्तक के कथ्य का सूचक है ?
(3) क्या आवरण पृष्ठ मजबूत एव टिकाऊ है ?
(4) क्या आवरण पृष्ठ पर दिया गया पुस्तक का शीर्षक सही आकार मे और उपयुक्त स्थान पर है ?

मुद्रण

मुद्रण की शुद्धता एव एकरूपता अच्छी पुस्तक के अनिवार्य अग हैं।

(1) क्या समस्त पुस्तक के पृष्ठो मे मुद्रण सबधी एकरूपता है ?
(2) क्या मुद्रण स्पष्ट है ?
(3) क्या मुद्रण आकर्षक है ?
(4) क्या पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर स्याही में समरूपता है ?
(5) क्या पुस्तक मे मुख्य शीर्षक और उपशीर्षको को अलग-अलग 'टाइप साइज' में लिखा गया है ?
(6) क्या पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर चारो ओर पर्याप्त हाशिया छोड़ा गया है ?

बंधावरण

बाल-साहित्य की पुस्तक अनेक हाथो मे जाती है। इसलिए उसका बंधावरण टिकाऊ होना आवश्यक है।

(1) क्या पुस्तक की जिल्द ठीक ढंग से सिली गई है ?
(2) क्या जिल्द टिकाऊ है जिससे बार-बार उपयोग करने पर भी पुस्तक को क्षति न पहुँचे ?
(3) क्या बधावरण ऐसा है कि पुस्तक स्पष्ट खुल सके ?

कागज

मुद्रण की स्पष्टता अच्छे कागज पर निर्भर करती है।

(1) क्या कागज सफेद और चिकना है ?
(2) क्या कागज पर्याप्त मजबूत है ?

टाइप

टाइप का साइज विभिन्न आयुवर्ग के बालकों के लिए लिए भिन्न होना चाहिए।

(1) क्या टाइप साइज बालकों की आयु के अनुकूल है ?

(2) क्या टाइप स्पष्ट और पठनीय है ?

(3) क्या आवरण पृष्ठ के शीर्षक और पुस्तक मे निहित शीर्षक और अन्य सामग्री के लिए अलग-अलग और उपयुक्त टाइप साइज है ?

चित्र

भौतिक पक्ष की दृष्टि से भी चित्रों का अपना महत्व है। इस दृष्टि से चित्रों का स्पष्ट होना, यथास्थान दिया जाना, उनका आकार और रग आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

(1) क्या चित्रों मे दिये गए तथ्य सही है ?

(2) क्या चित्र यथास्थान दिये गये है ?

(3) क्या चित्र स्पष्ट है ?

(4) क्या चित्रों में प्रयुक्त रग सही है ?

(5) क्या चित्र आकार की दृष्टि से आयुवर्ग के अनुकूल हैं ?

(6) क्या चित्र आकर्षक हैं ?

मूल्य

पुस्तक का विक्रय उसके मूल्य पर निर्भर करता है।

(1) क्या पुस्तक का मूल्य उसके आकार और साज-सज्जा के अनुकूल है।

(2) क्या पुस्तक का मूल्य सामान्य मनुष्य की पहुँच में है ?

टिप्पणी

समीक्षक उपर्युक्त निकष बिन्दुओ के आधार पर प्रत्येक तालिका के आगे दिये गये स्थान मे 'अति उत्तम', 'उत्तम', 'निम्न' मे से किसी एक पर सही (√) का चिह्न लगाएँ।

भाग-3

(उ) मूल्यांकन

1 संक्षिप्त विषय-वस्त

इसके अन्तर्गत पुस्तक का संक्षिप्त परिचय दिया जाए। इसमें पुस्तक के मूल कथ्य को केवल पाँच सात पंक्तियों मे वर्णित किया जाए।

2. समीक्षात्मक टिप्पणी

पुस्तक के समग्र रूप के आधार पर उसके सबध मे अपने विचार यहाँ लिखें। यदि पुस्तक अति उत्तम है तो उसके समस्त गुणों का उल्लेख कीजिए। यदि आपके विचार में पुस्तक को उत्तम श्रेणी में रखा जाना चाहिए तो पुस्तक की खूबियो और उसकी खामियो दोनों का निरूपण कीजिए। यह आवश्यक है कि पुस्तक के सबध मे आपकी समीक्षात्मक टिप्पणी मूल्यांकन तालिका मे दिए निकष बिन्दुओं पर ही आधारित हो।

ऊ. कक्षा स्तर के लिए उपयुक्तता

मूल्यांकन प्रपत्र मे तीन कक्षा स्तर दिये गए है—

(क) प्राथमिक कक्षा (कक्षा 2 से 5 तक)

(ख) माध्यमिक (कक्षा 6 से 8 तक)

(ग) उच्च/उच्चतर माध्यमिक (कक्षा 9 से 12 तक)

मूल्यांकन प्रपत्र के सभी निकष बिन्दुओं को ध्यान मे रखते हुए समीक्षक पुस्तक को जिस स्तर के अनुकूल समझे उसके आग सही (√) का चिन्ह लगाएँ।

(क) जो पुस्तक शैक्षिक और भौतिक दोनो पक्षो के निकष बिन्दुओं पर पूर्णतया खरी उतरती हो उसे 'अति उत्तम' कहा जाएगा।

(ख) जो पुस्तक कुछ निकष बिन्दुओं पर तो खरी उतरती है किन्तु उसमे कुछ कमियाँ भी हैं, वह 'उत्तम' कही जाएगी।

(ग) जिस पुस्तक के शैक्षिक और भौतिक दोनो ही पक्ष सतोषजनक नही है, उसे 'निम्न' के अन्तर्गत रखा जाएगा।

मूल्यांकनकर्ता पुस्तक को तीनों मे से जिस स्तर के अनुकूल समझे उसके आगे दिए गए स्थान में सही (√) का चिन्ह लगाए।

संस्तुति

सस्तुति के अन्तर्गत समीक्षक समस्त पुस्तक के मूल्याकन के आधार पर अपना स्पष्ट मत दें कि वे पुस्तक को बाल-साहित्य सूची मे लिए जाने योग्य समझते है अथवा नही। अपने मतानुसार 'अनुमोदित' अथवा 'अस्वीकृत' के आगे सही (√) का चिन्ह लगाएँ।

अन्त में मूल्यांकनकर्ता अपने हस्ताक्षर करें और तिथि लिखें। अपना नाम और पता भी अवश्य दे।

बाल-साहित्य मूल्याँकन प्रपत्र

भाग-1

(अ) सामान्य सूचनाएं

1. पुस्तक का शीर्षक
2. लेखक/सम्पादक
3. भाषा
4. मौलिक/अनूदित/सकलित
5. अनुवादक/रूपान्तरकार
6. पुस्तकमाला (यदि कोई हो तो)
7. प्रकाशन वर्ष
8. मूल्य
9. सस्करण
10. सचित्र/चित्र रहित
11. पृष्ठ संख्या
12. प्रकाशक (पूरा पता)

भाग—2

(आ) विशिष्ट सूचनाएँ

विषय-वस्तु का वर्गीकरण

1. लोकसाहित्य	( )	11. अर्थशास्त्रीय	( )
2 वीरता और साहस	( )	12 जीवनी	( )
3 पौराणिक/धार्मिक	( )	13. कला	( )
4. यात्रा वर्णन	( )	14. विज्ञान और प्राद्योगिकी	( )
5. अन्वेषण	( )	15. खेलकूद	( )
6. मनोरंजन	( )	16. हास्य और व्यग्य	( )
7. सामाजिक/सास्कृतिक	( )	17. पशु-पक्षी	( )
8. ऐतिहासिक	( )	18. राष्ट्रीय/अन्तर्राष्ट्रीय	( )
9. भौगोलिक	( )	19 अन्य	( )
10 नागरिकता	( )		

प्रस्तुतीकरण की विधा

1. कहानी	( )	6 उपन्यास	( ).
2. निबन्ध	( )	7. जीवनी	( )
3. कविता	( )	8. रिपोर्ताज	( )
4. नाटक/एकाँकी	( )	9 सस्मरण	( )
5. वार्तालाप	( )	10 अन्य	( )

(इ) विषयवस्तु

	अतिउत्तम	उत्तम	निम्न
1. कथावस्तु . (वस्तु का चयन, सही तथ्य, उपयुक्तता, शैक्षिक, एव राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति, वांछनीय मूल्य, मौलिकता)	( )	( )	( )

2. सामग्री का गठन, (क्रमबद्धता, सहसबद्धता, सतुलन)	( )	( )	( )
3. प्रस्तुतीकरण : (रोचकता, स्तरानुकूलता, स्पष्टता, विधा की उपयुक्तता, कल्पनाशीलता, और सृजनशीलता को प्रोत्साहन)	( )	( )	( )
4. भाषा शैली : (भाषा की शुद्धता, सरलता, उपयुक्तता, शैली की सरसता, सहजता, प्रवाहमयता)	( )	( )	( )
5. चित्र सज्जा · (विषय के अनुरूप, स्पष्ट, आकर्षक)	( )	( )	( )

(ई) भौतिक पक्ष

1. पुस्तक का आकार: (आयुवर्ग की अनुकूलता, उपयोग करने मे सरलता)	( )	( )	( )
2 आवरण पृष्ठ : (आकर्षक, टिकाऊ, पुस्तक के कथ्य का सूचक)	( )	( )	( )
3. मुद्रण : (स्वच्छता एव स्पष्टता, आकर्षक, एकरूपता, स्याही मे समरूपता, हाशिये की पर्याप्तता, साज-सज्जा)	( )	( )	( )
4. बधावरण · (टिकाऊ, स्पष्ट खुलना, उचित जुजबंदी)			
5 कागज : (सफेद चिकना एव मजबूत)	( )	( )	( )
6. टाइप : (आयुवर्ग के अनुकूल, पठनीय)	( )	( )	( )
7. चित्र (सही तथ्य, सही स्थान, उचित रंग, आकार की दृष्टि से आयुवर्ग के अनुकूल)	( )	( )	( )
8. मूल्य : (उचित)	( )	( )	( )

भाग—3

(उ) मूल्यांकन

1. संक्षिप्त विषयवस्तु

2. समीक्षात्मक टिप्पणी

(ऊ) कक्षा स्तर के लिए उपयुक्तता

1. प्राथमिक कक्षा (2 से 5 तक) ( )
2 माध्यमिक कक्षा (6 से 8 तक) ( )
3. उच्च/उच्चतर माध्यमिक कक्षा (9 से 12 तक) ( )

(ए) समस्त निकष बिन्दुओं के आधार पर मूल्यांकन

अति उत्तम ( )
उत्तम ( )
निम्न ( )

संस्तुति :

अनुमोदित ( )
अस्वीकृत ( )

समीक्षक का पूरा नाम :

पता :

समीक्षक के हस्ताक्षर
तिथि :